C.No-3981

कपील गीता

76

भाषाटीका

C.No-3981

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भागवततृतीयस्कन्धान्तर्गता-

कपिलगीता ।

मुरादाबादनिवासिविद्यावारिधिपण्डित
ज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-

भाषाटीकासहिता ।

सैव
क्षेमराजश्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना
मुम्बय्यां
खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन,
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

संवत् १९६९, शके १८३४.

ॐ

अथ श्रीमद्भागवततृतीयस्कन्धान्तर्गता

कपिलगीता ।

—❀❀❀—

भाषाटीकासहिता ।

प्रथमोऽध्यायः १.

शौनक उवाच ॥

कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ॥
जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥ १ ॥

श्रीशौनकजी बोले कि, तत्त्व सांख्यशास्त्रके कर्ता भगवान् कपिलदेवजी मनुष्योंको आत्मतत्त्वका उपदेश करनेके लिये अपनी मायासे आपही अजन्मा भगवान्ने जन्म लिया ॥ १ ॥

न ह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् ॥
विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यंति मेऽसवः ॥ २ ॥

सब पुरुषोंमें शिरोमणि; योगिजनोंमें श्रेष्ठ, ऐसे वासुदेव भगवान्की कीर्ति और परमेश्वरके अत्यन्त चरित्र सुननेसेभी मेरी इन्द्रियें तृप्त नहीं होतीं ॥ २ ॥

यद्यद्विधत्ते भगवान्स्वच्छंदाऽऽत्माऽऽत्ममायया ॥
तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥ ३ ॥

अपने प्यारे भक्तोंकी इच्छासे जो जो स्वरूप त्रिभुवनेश्वर भगवान् धारण करते हैं और अपनी मनमोहिनी मायासे जो जो अलौकिक लीला करते हैं. और अपनी मनमोहिनी मायासे जो जो अलौकिक लीला की हैं वे चरित्र मुझ श्रद्धालुको कीर्तन करनेके योग्य हैं, सो कृपा कर कीर्तन कीजे ॥ ३ ॥

सूत उवाच ॥

द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रेयो भगवांस्तथा ॥
प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥४॥

सूतजी बोले कि, वेदव्यासजीके प्यारे सखा ब्रह्मविद्यामें प्रेरित मैत्रेयभगवान्‌ने विदुरजीसे प्रीतिके मारे, इसी प्रकारके वचन कहे थे, जैसा तुमने मुझसे प्रश्न किया, सो हम तुमसे कहेंगे. आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये ॥ ४ ॥

मैत्रेय उवाच ॥

पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया ॥
तस्मिन्बिंदुसरेऽवात्सीद्भगवान्कपिलः किल ॥५॥

मैत्रेयजी बोले कि, जब कर्दमजी वनको चलेगये, तब कपिलदेवजी अपनी माताकी मनःकामनाको पूर्ण करनेके अर्थ उसी बिन्दुसरोवरपर वास करनेलगे ॥ ५ ॥

तमासीनमकर्माणं तत्त्वमार्गाग्रदर्शनम् ॥
स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरती वचः ॥ ६ ॥

अपने सुत अकर्मी तत्त्वमार्गके अग्र दिखानेवाले कपिल-देवजीको बैठा देखकर ब्रह्माका वचन स्मरण कर ॥ ६ ॥

देवहूतिरुवाच ॥

निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिंद्रियतर्षणात् ॥
येन संभाव्यमानेन प्रपन्नांधं तमः प्रभो ॥ ७ ॥

देवहूति बोली, हे भूमन्! हे प्रभो! खोटी इन्द्रियोंकी तृष्णासे अब वैराग्य प्राप्त हुआ जिन विषयोंकी भावनासे अन्धतममें गिरनापडा ❋ ॥ ७ ॥

तस्य त्वं तमसोऽधस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् ॥
सच्चक्षुर्जन्मनामंते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥ ८ ॥

जो महागम्भीर दुःखके समुद्रसे कठिनाई पूर्वक पार जा सकै; उस अन्धकारसे पार करनेवाले, अनेक जन्मोंके अंतमें आपकी कृपासे मुझको इस सुन्दरस्वरूपका दर्शन हुआ है॥८॥

य आद्यो भगवान् पुंसामीश्वरो वै भवान् किल ॥
लोकस्य तमसांधस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥ ९ ॥

❋ **शंका**—देवहूतिने कपिलमुनिसे कहा कि हे पुत्र! खोटी इन्द्रियोंसे तौ मैं खेदित हो छूटगई हूँ तौ फिर कपिलमुनिसे मुक्ति होनेका उपाय क्यों बूझा? क्योंकि जो खोटी इन्द्रियोंसे छूटगया तौ वह सब संसारसे छूटगया उसको मुक्ति होनेके उपाय पूछनेसे क्या प्रयोजन है?

उत्तर—देवहूती खोटी इन्द्रियोंसे छूटगई है तौभी भगवान्‌को अपना पुत्र देखके मुक्ति होनेवाले कर्मोंका लोभकरके अथवा मुक्तिके कर्मोंको पुष्ट करनेके लिये पूछती हुई.

पुरुषोंमें आद्य पुरुष भगवान् ईश्वर हैं सो आप हो; अँधियारेसे अन्धे हुए लोकोंके सूर्यके समान नेत्ररूप तुम उदित हुए हो ॥ ९ ॥

अथ मे देव संमोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ॥
योऽवग्रहोऽहं ममेतीत्येतस्मिन्योजितस्त्वया॥ १०॥

इस कारण हे देव! जो यह असत् आग्रह, अहं, ममता, मोह, आपनेही इनसे संयोगकर रक्खा है, सो आप हमारे मोहको दूर कीजे ॥ १० ॥

तं त्वा गताऽहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसार-
तरोः कुठारम् ॥ जिज्ञासयाऽहं प्रकृतेः पूरुषस्य
नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥ ११ ॥

शरणागतप्रतिपालक, भक्तवत्सल, अपने भक्तोंकी मृत्युके वृक्षको काटनेके लिये कुठाररूप, सद्धर्ममें श्रेष्ठ, प्रकृतिपुरुष जाननेकी इच्छा करके मैं तुम्हारे शरण आई हूं, इसलिये आपको प्रणाम करती हूं ॥ ११ ॥

मैत्रेय उवाच ॥

इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं निशम्य पुंसामप-
वर्गवर्धनम् ॥ धियाऽभिनंद्यात्मवतां सतां गति-
र्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥ १२ ॥

मैत्रेयजी बोले कि इसप्रकार अनिंद्य चाह, अपनी माताकी सुनी जो मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली बुद्धिसे सराहनाकर

आत्मज्ञानी सन्तोंके गतिरूप भगवान्ने मंद मंद मुसकानवाले शोभायमान मुखसे अपनी मातासे कहा ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निश्श्रेयसाय मे ॥
अत्यंतोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥ १३ ॥

कि, पुरुषोंके कल्याणार्थ ब्रह्मविद्यामें आशा रखनी यही मेरा मत है, जिस ब्रह्मविद्याके लाभ होनेसे सुखदुःखका नाश होजाता है ॥ १३ ॥

तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुरानघे ॥
ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वांगनैपुणम् ॥१४॥

हे अनघे ! सर्वप्रकारसे बहुत निपुणयोगको सुनने की इच्छावाले योगियोंको जो योग मैंने प्रथम कहाथा वही कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥ १४ ॥

चेतः खल्वस्य बंधाय मुक्तये चात्मनो मतम् ॥
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥ १५ ॥

चित्त निश्चयकरके इसके बंधनार्थ है और आत्माका चित्त मुक्तिके अर्थभी कहाहै; गुणोंमें आसक्तता होनेसे बंधन होता है और जिस पुरुषका चित्त ईश्वरमें लगै वह मुक्त होजाताहै ॥ १५ ॥

अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः ॥
वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥ १६ ॥

मैं, मेरा, यह अभिमानसे उठाहुआ, कामलोभादि मलोंसे रहित शुद्ध मन होता है तब सब दुःखोंका नाश होकर सुखकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

तदा पुरुषमात्मानं केवलं प्रकृतेः परम् ॥
निरंतरं स्वयंज्योतिरणिमानमखंडितम् ॥ १७ ॥

तब पुरुष आत्मा केवल प्रकृतिसे परे निरंतर स्वयंज्योति अणुमात्र अखंडित परमेश्वरको ॥ १७ ॥

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना ॥
परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम् ॥ १८ ॥

ज्ञानवैराग्यभक्तियुक्त आत्मद्वारा सबसे उदासीन प्रकृतिके पराक्रमका नाश करनेवाला ब्रह्म जीव ब्रह्मको देखताहै १८॥

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलाऽत्मनि ॥
सदृशोऽस्ति शिवः पंथा योगिनां ब्रह्मसिद्धये॥ १९॥

भगवान् अखिलात्मामें लगे हुएके समान योगियोंको ब्रह्मसिद्धिके लिये इससे अधिक और मंगलदायक मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥

प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ॥
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥ २० ॥

इस जीवको जगत्में आसक्त होजाना यह अजरअमर फाँसी है, यही आसक्ति साधुसन्तोंमें करै तौ उसके लिये मोक्षका द्वार खुला हुआ है ॥ २० ॥

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ॥
अजातशत्रवः शांताः साधवः साधुभूषणाः ॥२१॥

मुनिजनोंका कथन है कि सबकी सब बातैं सहै, सब देह-धारियोंपर दयालुता रक्खै, सब जीवमात्रके सुहृद्भावसे वर्त्तै, किसीको अपना शत्रु न समझै, शांतगुण परकार्य सहायक साधुओंके अलंकार हैं ॥ २१ ॥

मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वंति ये दृढाम् ॥
मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबांधवाः ॥२२॥

जो मुझमें अनन्यभावसे दृढिभक्ति करके मेरेलिये सब काम त्यागते हैं, और सब स्वजन बन्धुओंसे स्नेह छोडते हैं ॥२२॥

मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वंति कथयंति च ॥
तपंति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥ २३ ॥

जो मेरीही कथा मनोहर मृदुलको सुनते हैं, अथवा कहते हैं, और जो अपना मन मुझमें लगाते हैं उनको किसी प्रकारका ताप नहीं व्यापसक्ता ॥ २३ ॥

त एते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्जिताः ॥
संगस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः संगदोषहरा हि ते ॥२४॥

हे साध्वी ! जो साधु हैं वे सब संगसे रहित हैं और किसी तापसे तापित नहीं होते, उन महात्माओंका सत्संग करना

चाहिये. किसलिये कि वे सब संगतिके दोष दूर करने-
वाले हैं ॥ २४ ॥

सतां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो भवंति हृत्कर्णर-
सायनाः कथाः ॥ तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ २५ ॥

हे जननी ! सन्तोंके प्रसंगसे मेरे पुरुषार्थवाली कथा हृदय
और कर्णकी सुखदायक आत्मज्ञान करानेवाली कथा
होती है, उसके सुनने और प्रेम करनेसे मोक्षमार्गमें शीघ्र
श्रद्धा, प्रीति, भक्ति, श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविंदमें सहज २
में उत्पन्न होसक्ती है ॥ २५ ॥

भक्त्या पुमाञ्जातविराग ऐंद्रियादृष्टश्रुतान्मद्रच-
नाऽनुचिन्तया ॥ चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योग-
युक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥ २६ ॥

मेरे चरित्रोंका चिंतवन करनेसे प्रथम मनुष्यके हृदयमें
भक्ति प्रगट होती है, और भक्ति करनेसे पुरुषको वैराग्य उत्पन्न
होताहै. और वैराग्यमें मेरी अलौकिक रचनाके विचार करनेसे
योगयुक्त होकर चित्तके ग्रहणार्थ कोमल योगके मार्गोंसे
यत्न करै ॥ २६ ॥

असेवयाऽयं प्रकृतेर्गुणानां ज्ञानेन वैराग्यविजृं-
भितेन ॥ योगेन मय्यार्पितया च भक्त्या मां
प्रत्यगात्मानमिहावरुंधे ॥ २७ ॥

प्रकृतिके गुणोंकी सेवा न करनेसे और ज्ञानवैराग्य अधिक बढ़ानेका चिंतवन करै; योगका साधन करै, सब कर्म मेरे समर्पण करै और एकाग्रचित्त हो मेरी दृढभक्ति करनेसे प्राणी सर्व अंतर्यामी मुझको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

देवहूतिरुवाच ॥

का स्विन्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ॥
यया पदं ते निर्वाणमंजसाऽन्वश्नवा अहम् ॥२८॥

देवहूती बोली कि ऐसी कौनसी भक्ति है जिसको मैं करसकूँ? क्योंकि मैं स्त्री हूँ,मुझको किसप्रकारकी भक्ति करनी चाहिये? जिसके प्रभावसे विना प्रयास तुम्हारा मोक्षपद प्राप्त होता है ऐसा मैंने सुनाहै ॥ २८ ॥

यो योगी भगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः॥
कीदृशः कति चांगानि यतस्तत्त्वावबोधनम्॥२९॥

भगवान्का उपलक्ष करनेवाला योग तुमने कहा है. सो कैसा है ? और उसके कितने अंग हैं ? जिससे तत्त्वज्ञान होताहै ॥ २९ ॥

तदेतन्मे विजानीहि यथाऽहं मंदधीर्हरे ॥
सुखं बुध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥ ३० ॥

हे हरे ! ऐसी सुगमरीतिसे कोई शिक्षा मुझको करो कि, जिसके प्रभावसे मैं मन्दमति स्त्रीभी तुम्हारे अनुग्रहसे कठिन बातको सहजमें समझलूँ ॥ ३० ॥

मैत्रेय उवाच ॥ विदित्वाऽर्थं कपिलो मातु-
रित्थं जातस्नेहो यत्र तन्वाऽभिजातः ॥
तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदंति सांख्यं प्रोवाच वै भक्ति-
वितानयोगम् ॥ ३१ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, कपिलदेवजीने अपनी जननीके मनोरथ-
को जानकर अधिक स्नेह किया, जहाँ शरीरधारी होकर जन्मे
उस माताको तत्त्वोंकी संख्यावाले सांख्यशास्त्रकी शिक्षा भक्ति
विस्तृत योगकी रीतिसे कपिलदेवजी कहनेको उद्यत हुए ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

देवानां गुणलिंगानामानुश्रविककर्मणाम् ॥
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥ ३२ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, गुणोंके जिनके शरीर वेदविहित
कर्म करैं, ऐसे देवताओंका सतोगुण एक मन है. उनकी जो
स्वभावकी वृत्ति है वही भक्ति है ॥ ३२ ॥

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ॥
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥ ३३ ॥

निष्प्रयोजन कीहुई भागवती भक्ति बड़ी सिद्धि है जैसें
जठरानल भोजन कियेहुए अन्नको भस्म कर देताहै,
वैसेही भक्तिभी वासनाको जलादेतीहै ॥ ३३ ॥

नैकात्मतां मे स्पृहयंति केचिन्मत्पादसेवाऽभि-
रता मदीहाः ॥ येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्ज्य
सभाजयंते मम पौरुषाणि ॥ ३४ ॥

मेरे चरणोंकी सेवामें जिन पुरुषोंकी चेष्टा रहतीहै और केवल मेरेही लिये सब कर्म करतेहैं वे लोग सायुज्यमोक्षकी इच्छा नहीं रखते, वे सज्जनपुरुष इकट्ठे होकर मेरे चरित्रोंकी प्रशंसा करतेहैं ॥ ३४ ॥

पश्यंति ते मे रुचिराण्यंब संतः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ॥ रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदंति ॥ ३५ ॥

हे अम्ब ! वे महात्मालोग मेरा कोटिशशिसम प्रसन्नवदन, अरुणनयन, दिव्यवरप्रद रूपोंको वाणीसे वारंवार कहतेहैं और आनंदित हो होकर निहारतेहैं ॥ ३५ ॥

तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षितवामसूक्तैः। हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुंक्ते ॥ ३६ ॥

दर्शनयोग्य रूप, उदार विलासहास, अवलोकन, संभाषण अत्यन्त मनोहर सूक्तोंसे जिनके प्राण व मन और इन्द्रियोंको वशमें करलिया है उनको विना इच्छाके भी सूक्ष्मगति देताहै ३६

अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टांगमनुप्रवृत्तम् ॥ श्रियं भागवतीं वाऽस्पृहयंति भद्रां परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥ ३७ ॥ न कर्हिचिन्मत्पराः शांतरूपे नंक्ष्यंति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ॥ येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥ ३८ ॥

इसलिये विभूति, ऐश्वर्य, अष्टाङ्गयोगसे भागवती श्रीकल्याण-दायिनी भक्तिके पश्चात् आपही प्राप्त होते हैं जो सत्पुरुष मुझमें परायण हैं, वे शान्तरूप कभी नाश नहीं होते और मेरा कालचक्र उनको नहीं मारसक्ता क्योंकि जिनका मैं प्रिय आत्माहूं, पुत्रके तुल्य प्रतिपालक, मित्रके समान विश्वासी, गुरुके सदृशउपदेशक, भ्राताके समान हितकारी और देवतावत् पूज्यवर हूं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुपयायिनम् ॥
आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः ॥३९॥

इस लोक और परलोकको और दोनों लोकोंमें जानेवाले आत्माको और आत्माके पीछे जो यहां धन, पशु, गृह इत्या-दिक और वस्तु हैं ॥ ३९ ॥

विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ॥
भजंत्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥४०॥

उनको सबको त्यागकर और विश्वमुख मुझको जो अनन्यभावसे भजतेहैं उनको मैं संसारसागरसे पार उतार देता हूं ॥ ४० ॥

नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ॥
आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥ ४१ ॥

भगवान् पुरुषेश्वर और सब पदार्थोंका आत्मा व अधिष्ठाता

जो मैं हूं, मेरी शरणागत विना आत्माको सब जीवोंका तीव्रभय कभी निवृत्त नहीं होसक्ता ॥ ४१ ॥

मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ॥
वर्षतींद्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥ ४२ ॥

मेरे भयसे पवन चलताहै, सूर्य तपताहै, इंद्र जल वर्षाताहै, अग्नि दाह करताहै और मृत्यु संसारमें घूमता फिरताहै ॥ ४२ ॥

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः ॥
क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशंत्यकुतोभयम् ॥ ४३ ॥

ज्ञानवैराग्ययुक्त भक्तियोगसे योगीजन अपनी कुशलके लिये निर्भय हो मेरे चरणारविंदका आश्रय लेते हैं ॥ ४३ ॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां निश्श्रेयसोदयः ॥
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीकपिलगीतायां भक्तिलक्षणवर्णनंनाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पुरुषोंको आनन्दका हेतु इसलोकमें इतनाही है कि, तीव्र भक्तियोगसे स्थिरमन मुझमें अर्पित करैं * ॥ ४४ ॥

इति कपिलगीताभाषाटीकायां भक्तिलक्षणवर्णनं नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

* सवैया ॥ मंगल होत सबै सुख देत सदा आणिमादिक मोद बढावत ॥ पावन औरनहूको करै प्रियसंतसभा धनिवादको छावत ॥ शुद्धहिंतैं नित युक्ति चितै कर कर्म त्रितैऊ इतै नहिं आवत ॥ जो भजिहै यदुनन्दनको सोई जन्मपदारथ को फल पावत ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

श्रीभगवानुवाच ॥

अथ ते संप्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ॥
यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले कि अब मैं तुमको तत्त्वोंके लक्षण पृथक् २ सुनाता हूं, जिनके जाननेसे पुरुष प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त होजाता है ॥ १ ॥

ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ॥
यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रंथिभेदनम् ॥ २ ॥

पुरुषके आत्माका दर्शन जो ज्ञानमोक्षके लिये है सो तुमसे वर्णन करता हूं, वही ज्ञान हृदयकी ग्रन्थिका भेदन करनेवाला है ॥ २ ॥

अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥
प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम्॥३॥

अनादि, आत्मा, पुरुष, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, पूजनीय, तेजका आप ज्योति स्वरूप हैं, जिससे यह विश्व प्रकाशित है ॥३॥

स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः॥
यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥ ४ ॥

सो यह प्रभु सूक्ष्म, दैवी, गुणमयी, यदृच्छासे प्राप्त प्रकृतिको लीलाकरके प्राप्त हुए. यहां यह सिद्धान्त है"आवरणशक्ति

और विक्षेपशक्ति भेदसे प्रकृति दो प्रकारकी है। आवरण-शक्ति जो है वही जीवोंकी उपाधि अविद्या है, और विक्षेपशक्ति जो है वह परमात्माकी माया है और पुरुष भी जीव और ई-श्वर दो प्रकारका है, जो प्रकृति अज्ञानसे संसारमें आता है वह तो जीव है और जो प्रकृतिको वशमें करके विश्वकी सृ-ष्ट्यादि करता है वह ईश्वर है" ॥ ४ ॥

गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ॥
विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया ॥ ५ ॥

ज्ञानकी ढकनेवाली मायाको विचित्र अपने समान प्रजाको गुणोंसे रचती देख सो जीव ज्ञानचेष्टासे मोहित हो अपने स्व-रूपको भूलगया, अर्थात् मैं देह हूं, यह समझनेलगा ॥ ५ ॥

एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् ॥
कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ॥ ६ ॥

इसप्रकार परमेश्वरके ध्यानसे और प्रकृतिके करेहुये गुणोंसे कर्म करनेपरभी यह जीव कहता है कि, मैं कर्म करता हूं कर्ताभावको आत्मामें मानताहै ॥ ६ ॥

तदस्य संसृतिर्बंधः पारतंत्र्यं च तत्कृतम् ॥
भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥

यद्यपि यह पुरुष साक्षीमात्र है, इसकारण अकर्ता है तौ भी इस अकर्ताकोही अपनेमें कर्मत्वधर्मको माननेसे ही कर्मोंका

बंधन होताहै; और जो किसीके आधीन नहीं है, उसीको भो-
गोंमें पराधीनता होती है,और जो सुखात्मक है उसको जन्म
अर्थात् मृत्युप्रवाह होता है ॥ ७ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः ॥
भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ८ ॥

कार्य कारण कर्तृत्वमें कारण प्रकृतिको जानो,सुखदुःखके
भोक्ता प्रकृतिसे परे पुरुषहै ॥ ८ ॥

देवहूतिरुवाच ॥

प्रकृतेःपुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम ॥
ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥ ९ ॥

देवहूती बोली कि, हे पुरुषोत्तम ! प्रकृतिपुरुषका लक्षण क-
हो,और इनका सत् असत् आत्माका कारण है सो कहो९॥

श्रीभगवानुवाच ॥

यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषविशेषवत् ॥ १० ॥

श्रीभगवान् बोले कि, स्वतः विशेष अर्थात् भेदरहित होनेपर
भी जो सर्व विशेषोंका आश्रय और प्रधानतत्त्व है उसे प्रकृति
कहते हैं,क्या ब्रह्मको प्रकृति कहतेहो ? नहीं वह त्रिगुण है
और ब्रह्म गुणरहित है, तब क्या महत्तत्त्वादि हैं ! नहीं, व-
ह कार्य नहीं है. महत्तत्त्वादि कार्यहैं, क्या काल आदिहै ?
नहीं वह कार्य कारण रूपहै, काल कार्यकारणरूप नहींहैं,
तब क्या जीव प्रकृतिहै ? नहीं, वह नित्य है ॥ १० ॥

पंचभिः पंचभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा ॥
एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥ ११ ॥

पांच २, चार और दश यह चौवीस तत्त्वोंका समूह प्रकृतिकी बनावट होनेसे प्राकृतिक कहलाता है ॥ ११ ॥

महाभूतानि पंचैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः ॥
तन्मात्राणि च तावंति गंधादीनि मतानि मे॥१२॥

पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, आकाश, ये पांच महाभूत होते हैं; और गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द ये पांच तन्मात्रा हैं ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः ॥
वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते ॥ १३ ॥

नासिका, त्वचा, दृष्टि, जिह्वा, श्रोत्र, ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं; वाक्, कर, चरण, शिश्न, गुदा, ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं, नासिका यह मिलकर दश इन्द्रियें हुईं ॥ १३ ॥

मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यंतरात्मकम् ॥
चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्यालक्षणरूपया ॥ १४ ॥

मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये आत्माके भीतर हैं, लक्षण, रूप धृतियोंसे चार प्रकारका भेद लक्षित होता है ॥ १४ ॥

एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह ॥
सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पंचविंशकः॥१५॥

सगुणरूपका इतनाही व्याख्यान है, यह संक्षेपमात्र मैंने

तुमसे कहा, जो काल है वह भी मायाकी ही एक अवस्था पचीस तत्त्व होकर रहती है॥ १५ ॥

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम् ॥
अहंकारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥ १६ ॥

जो पुरुष अहंकारवश हो मूढतासे कहते हैं कि, यह काल परमेश्वरका प्रभाव है और देह हम हैं, इसप्रकार अज्ञानतासे देहाभिमानी पुरुषको जगत्का भय बना रहता है ॥ १६ ॥

प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ॥
चेष्टा यतः स भगवान्काल इत्युपलक्षितः ॥१७॥

हे माता ! जिसको कोई विशेष नहीं, त्रिगुणसाम्यभाव ही जिसका स्वरूप है, प्रकृतिकी चेष्टा काल है, जिससे भगवान्का अनुमान होता है ॥ १७ ॥

अंतः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ॥
समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥१८॥

जो भगवान् अपनी मायासे सब जीवमात्रके भीतर प्राप्त होरहे हैं, भीतर पुरुषसे और बाहर कालरूपसे रहते हैं १८॥

दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ॥
आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम्॥१९॥

दैवसे क्षोभको जिसके धर्म प्राप्त हुए, ऐसी अपनी योगमायामें परपुरुषने हिरण्यमय महत्तत्त्वको रचा ॥ १९ ॥

विश्वमात्मगतं व्यंजन्कूटस्थो जगदंकुरः ॥
स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥ २० ॥

अपने भीतर विश्वको जो धारण किया था उसको प्रकट किया और सर्वान्तः स्थिर जगत्का अंकुर महत्तत्त्वको अपने आप सुलानेवाले तमको अपने तेजसे पीलिया ॥ २० ॥

यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शांतं भगवतः पदम् ॥
यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥ २१ ॥

जो सत्त्वगुण स्वच्छ शांत रागद्वेषरहित, भगवत्का उत्तम स्थान है, जिसको वासुदेव कहते हैं, महत्तत्त्वरूप चित्त है, पंडितलोग इसमें यह सिद्धान्त करते हैं, कि उपास्य वासुदेव है, क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता है. इसीप्रकार उपास्य व अहंकारमें संकर्षण उपास्य हैं, रुद्र अधिष्ठाता है मनमें अनिरुद्ध उपास्य हैं, चंद्रमा अधिष्ठाता है, बुद्धिमें प्रद्युम्न उपास्य है ब्रह्म अधिष्ठाता है ॥ २१ ॥

स्वच्छत्वमविकारित्वं शांतत्वमितिचेतसः
वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथाऽपां प्रकृतिः परा ॥२२॥

पृथ्वीका संसर्ग होनेसे प्रथम जैसे जलकी स्थिति स्वच्छ और शांत होती है तैसेही दूसरे विकारके प्राप्त होनेसे प्रथम स्वच्छता अर्थात् भगवान्के विभवका ग्रहणकरना, लयविक्षेप शून्यहोना, शांतहोना, इन वृत्तियोंद्वारा महतत्त्वका लक्षण कहाजाताहै ॥ २२ ॥

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसंभवात् ॥
क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥ २३ ॥

भगवत्के वीर्यसे जिसकी उत्पत्ति ऐसा महत्तत्त्व विकारको प्राप्तहुआ, तब क्रियाशक्ति अहंकार त्रिविध उत्पन्न हुआ २३

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ॥
मनसश्चेंद्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥२४ ॥

वैकारिक, तैजस, तामस, जिससे हों, वह मन इन्द्रियें पंचभूत महत्तत्व इनसे प्रगट होतेहैं ॥ २४ ॥

सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनंतं प्रचक्षते ॥
संकर्षणाख्यं पुरुषं भूतेंद्रियमनोमयम् ॥ २५ ॥

अहंकारके उपास्य देवता भगवान् शेषजी हैं जिनके सहस्र शीश हैं उनको साक्षात् अनंत कहते हैं वे संकीर्ण पुरुष हैं, भूतइन्द्रिय मनोमय हैं ॥ २५ ॥

कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ॥
शांतघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः ॥ २६ ॥

कर्तृत्व, करणत्व, कार्यत्व, शांतत्व, घोरत्व, विमूढत्व यह अहंकारका लक्षण है ॥ २६ ॥

वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायतः ॥
यत्संकल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसंभवः ॥२७॥

जब सात्विक अहंकार विकारको प्राप्त होता है, तब मनस्तत्त्व प्रगट होता है और संकल्प, विकल्पसे जो कामना उत्पन्न होती है वह मनका लक्षण है ॥ २७ ॥

यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ॥
शारदेंदीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥२८॥

सब इन्द्रियोंके अधीश्वर, शरद्कालके नील कमलसमान श्यामस्वरूप, योगियोंसे सुन्दर आराधन करनेके योग्य उनको अनिरुद्ध कहते हैं ॥ २८ ॥

तैजसात्तु विकुर्वाणाद् बुद्धितत्त्वमभूत्सति ॥
द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिंद्रियाणामनुग्रहः ॥ २९ ॥

हे जननि ! तैजस अहंकार तत्त्व जब विकारको प्राप्त हुआ, तब बुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ; इसमें द्रव्यका स्फुरणज्ञान इन्द्रियोंका अनुग्रह होता है ॥ २९ ॥

संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च ॥
स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक् ॥ ३० ॥

संशय, मिथ्याज्ञान, निश्चय, स्मृति, निद्रा ये बुद्धिके लक्षण हैं सब वृत्तियोंसे पृथक् ॥ ३० ॥

तैजसानींद्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः ॥
प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥३१॥

ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय ये दशों राजसअहंकारसे उत्पन्न हुई कहते हैं, क्रियाशक्ति प्राणकी है और विज्ञानशक्ति बुद्धिकी है, ये दोनों राजस और अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं. इसलिये ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय भी इसीसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३१ ॥

तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् ॥
शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं च शब्दगम् ॥३२॥

भगवत्के वीर्यसे प्रेरित तामस अहंकार जब विकारको प्राप्त हुआ, उससे शब्दमात्र प्रगट हुआ, और शब्दसे नभ उत्पन्न हुआ और शब्दकी उपलब्धि करनेवाली श्रोत्रइन्द्रिय, राजस और अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥

अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिंगत्वमेव च ॥
तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥३३॥

शब्दसे सब पदार्थोंके नाम होते हैं, जो मनुष्यदृष्टिमें नहीं आता तोभी वह किसी पदार्थको देखकर उसके चिह्न-मात्रका ज्ञान होना, उसकी मात्रा जाननी यह कवियोंने आकाशका लक्षण कहाहै, शब्दके अर्थको अर्थात् जिससे सब पदार्थोंके नाम रक्खे जाते हैं जानना और देखनेवालेके चिह्नमात्रका ज्ञान न होना और उसकी मात्राको पहिचानना यह बुद्धिमानोंने आकाशका लक्षण कहा है ॥ ३३ ॥

भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरंतरमेव च ॥
प्राणेंद्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥३४॥

सब प्राणिमात्रोंमें अवकाशका छिद्र रखना और बाहर भीतर व्यवहारको आश्रय देना, प्राण इन्द्रिय आत्मामें स्थान रखना आकाशकी वृत्तिका लक्षण है ॥ ३४ ॥

नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः ॥
स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक्स्पर्शस्य च संग्रहः ३५॥

शब्द तन्मात्रावाला आकाश जब कालकी गतिसे क्षुभित

हुआ तब उससे स्पर्शतन्मात्रा प्रगट हुई, उससे वायु उत्पन्न हुई त्वचा इन्द्रियसे स्पर्शका ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥

मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च ॥
एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥३६॥

कोमलता, कठिनता, शीतलता, उष्णता यह स्पर्शरूप वाले पवनकी तन्मात्रा हैं, यही स्पर्शका लक्षण है-॥ ३६ ॥

चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः ॥
सर्वेंद्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥३७॥

वृक्षादिकोंके पत्तोंको चलायमान करना, शब्दका ले जाना, तृणादिकोंको मिलाना, प्राप्त कराना, सब इन्द्रियोंको बलदेता, यह कर्मद्वारा वायुका लक्षण कहा है ॥ ३७ ॥

वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं दैवेरितादभूत्
समुत्थितं ततस्तेजश्चक्षूरूपोपलंभनम् ॥ ३८ ॥

जब स्पर्शवाली वायु दैवसे प्रेरित हुई तब उससे रूप प्रगट हुआ, उससे तेज हुआ, उससे ग्रहण करनेवाली चक्षु-इन्द्रिय हुई ॥ ३८ ॥

द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेव च ॥
तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥ ३९ ॥

हे माता ! रूप पदार्थोंको आकार देता है और द्रव्यमें गौणरीतिसे प्रतीत होना और पदार्थोंकी रचनाके पीछे प्रतीत होना यह भी रूपमात्राकी वृत्ति हैं ॥ ३९ ॥

द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् ॥
तेजसोवृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुत्तृडेव च ॥ ४० ॥

प्रकाश, पाचन, पान, भोजन, शीतमर्दन, भूख प्यास, सुखाना ये तेजकी वृत्तियें हैं ॥ ४० ॥

रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् ॥
रसमात्रमभूत्तस्मादंभो जिह्वारसग्रहः ॥ ४१ ॥

जब दैवइच्छासे रूपगुणवाला तेज विकारी हुआ, तब उससे रसमात्रा हुई, उससे जल हुआ; उसकी ग्रहण करनेवाली जीभ हुई ॥ ४१ ॥

कषायो मधुरस्तिक्तः कट्वम्ल इति नैकधा ॥
भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥ ४२ ॥

यह एकरस भौतिक विकारसे कसैला, मधुर, चर्परा, कड़ुआ, खट्टेआदि अनेक भेदोंको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

क्लेदनं पिंडनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोदनम् ॥
तापापनोदो भूयस्त्वमंभसो वृत्तयस्त्विमाः ॥४३॥

गीलापन, गोला बांधना, तृप्ति करना, जीवन, प्यासमिटाना, नर्म करना, ताप दूर करना, कूपादिसे जल निकालनेपर भी अधिक होना यह जलवृत्ति है ॥ ४३ ॥

रसमात्राद्विकुर्वाणादंभसो दैवचोदितात् ॥
गंधमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वीघ्राणस्तु गंधगः ॥ ४४ ॥

रसगुणवाला जल, जब दैवसे प्रेरित हो विकारको प्राप्त-

हुआ तब उसमें गंधतन्मात्रा हुई, उससे पृथ्वी हुई, नासिकासे गंधग्रहण होती है ॥ ४४ ॥

करंभपूतिसौरभ्यशांतोदग्रादिभिः पृथक्॥
द्रव्यावयववैषम्याद्गंध एको विभिद्यते ॥ ४५ ॥

यह एकहीगंध संसर्गवाले पदार्थोंकी विषमतासे मिली गन्ध और सुगन्ध शांत व उग्र आदि अनेक भेदवाली होती है॥४५॥

भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् ॥
सर्वसत्त्वगुणाद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥ ४६ ॥

प्रतिमादिरूपसे ब्रह्मका भावनकरना, स्थान देना, धारण करना, आकाशादिकोंका मठाकाशआदिरूपसे अवच्छेदक होना, और सब जीवमात्रके गुणों को भेदकरना यह पृथ्वीकी वृत्तिका लक्षण है ॥ ४६ ॥

नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ॥
वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ॥४७॥

आकाशका मुख्य गुण शब्दविषयवाली श्रोत्र इन्द्रिय कहलाती है और वायुके मुख्यगुणयुक्त स्पर्शगुणवाली त्वचा इन्द्रिय कहलाती है ॥ ४७ ॥

तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते ॥
अंभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः ॥
भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते॥ ४८ ॥

तेजके मुख्यगुणरूपविषयवाली चक्षु इन्द्रिय है और जलके

मुख्य गुणरस विषयवाली जिह्वा इन्द्रिय है, पृथ्वीका मुख्यगुण गन्धविषयवाली घ्राण इन्द्रिय कहलाती है ॥ ४८ ॥

परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन् समन्वयात् ॥
अतो विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते॥ ४९ ॥

इन परपदार्थोंका पिछले पदार्थोंमें संबंध होनेसे अपने कारण आकाशादि पदार्थोंका धर्म शब्दादिकार्यरूप वायुआदि पदार्थोंमें अपने धर्म स्पर्शादिके संग दीखता है.इसीसे पृथ्वीमें चारों कारणोंके धर्म शब्द, स्पर्श,रूप,रस और अपना धर्म,गन्ध यह देखनेमें आते हैं ॥ ४९ ॥

एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै ॥
कालकर्मगुणोपेतो जगदादिरुपाविशत् ॥ ५० ॥

जब यह महत्तत्त्वादि सातों पदार्थ परस्पर न मिले,तब इनमें और तत्त्वोंमेंभी कालकर्मगुणोंके साथ जगदादि ईश्वरने प्रवेश किया ॥ ५० ॥

ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योंडमचेतनम् ॥
उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौविराट् ॥ ५१ ॥

फिर परमेश्वरके प्रवेश करनेसे जब यह क्षोभको प्राप्त हुए, तब अचेतन अण्ड प्रगट हुआ, उससे विराटपुरुष हुआ ॥५१॥

एतदंडं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ॥
तोयादिभिःपरिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ॥
यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ॥ ५२ ॥

चौदह भुवनवाला यह भगवान्‌का स्वरूपभूत पृथ्वीरूप ब्रह्माण्ड बाहरकी और प्रधानसे घिरे हुए, जलादि सात आवरण जो क्रमसे एक २ से दशगुणे बड़े हैं.उनसे घिरा है ॥५२॥

हिरण्मयादंडकोशादुत्थाय सलिलेशयात् ॥
तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ॥५३ ॥

उदासीनताका त्यागन कर भगवान् महादेवने जलमें पडेहुए हिरण्मय अंडकोशमें प्रवेशकर बहुत प्रकारसे छिद्र करदिये५३

निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् ॥
वाण्यामह्निरथो नासे प्राणोऽतो घ्राण एतयोः ५४॥

मुख प्रथम प्रगट हुआ उससे वाणी हुई,उसके देवता वह्नि हुए, फिर नाक उत्पन्न हुई,जो प्राणको चलानेवाली हुई, इससे घ्राण इन्द्रिय हुई ॥ ५४ ॥

घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः ॥
तस्मात्सूर्यो न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततो दिशः५५॥

घ्राणसे वायु उत्पन्न हुई.इन दोनोंसे अक्षिणी चक्षु हुए, उससे सूर्य उत्पन्न हुआ, फिर कान प्रगट हुए उसमें श्रोत्र इन्द्रिय हुई,उनसे दशों दिशा प्रगट हुई ॥ ५५ ॥

निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्र्वादयस्ततः ॥
तत ओषधयश्चासञ्छिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥५६॥

फिर विराट्की त्वचा निकली, उसमें रोम,मूँछ,केश आदि हुए, उनसे सब ओषधि उत्पन्न हुई,फिर शिश्नेंद्रिय हुई॥५६॥

रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् ॥
गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ ५७ ॥

उसमें जलरूप वीर्य उत्पन्न हुआ, फिर गुदा उत्पन्न हुई, गुदामें अपान रहताहै; अपानवायुसे लोकोंकी भय देनेवाली मृत्यु प्रगटी ॥ ५७ ॥

हस्तौ च निरभिद्येतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् ॥
पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्यां ततो हरिः ॥५८॥

फिर विराट्के दोनों हाथ उत्पन्न हुए, उनमें बल हुआ और इन्द्रदेवता प्रगटहुए फिर विराट्के पांव निकले, उनमें गति हुई और हरिदेवता प्रगट हुए ॥ ५८ ॥

नाड्योऽस्य निरभिद्यंत ताभ्यो लोहितमावृतम् ॥
नद्यस्ततः समभवन्नुदरं निरभिद्यत ॥
क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् ॥५९॥

फिर नाडियां निकलीं, उनमें रुधिर भरा और नदियां प्रगटीं, फिर उदर उत्पन्न हुआ, उसमें भूख प्यास हुई, सागर देवता हुआ ॥ ५९ ॥

अथास्य हृदयं भिन्नं हृदयान्मन उत्थितम् ॥
मनसश्चंद्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरां पतिः ॥
अहंकारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्त्यस्ततोऽभवत् ॥६०॥

फिर विराट्का हृदय उत्पन्न हुआ, उसमें मन उत्पन्न हुआ. मनमें चन्द्रमा प्रगट हुआ, फिर सब वाणियोंके पति बुद्धि उत्पन्न

हुई, बुद्धिसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ. फिर हृदयमें अहंकार उत्पन्न हुआ उसमें क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता प्रगट हुए, फिर विराट्के हृदयमें चित्त इन्द्रिय उत्पन्न हुआ, और चित्तमें क्षेत्रज्ञ प्रगट हुआ ❀॥ ६० ॥

एते ह्यभ्युत्थिता देवा नैवास्योत्थापनेऽशकन् ॥
पुनराविविशुः खानि तमुत्थापयितुं क्रमात् ॥
वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६१॥

यह सब देवता उत्पन्न होकर उस विराट्के देहमें घुसे, परन्तु उसको उठा न सके, फिर क्रमसे आकाशादिकोंने उठानेको उसमें प्रवेश किया, वाणीके मार्ग हो अग्निने मुखमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा॥ ६१ ॥

घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥
अक्षिणी चक्षुषादित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ६२ ॥

घ्राणइन्द्रिय सहित नाकमें पवन घुसा तौ भी विराट् न

❀ शंका—हे मुनियो ! मैं ईश्वरवाचक जीव जलमें जो विराट्रूप अंड रहा उसको उठानेके लिये सब इंद्रियगण अपने अपने देवताओंसमेत अपना अपना यत्न करनेलगीं परंतु वह वहांसे नहीं उठा, वह विराट् कौन है ?

उत्तर—जिस विराट्रूप परमात्मासे ये तीन लोक चौदह भुवन उत्पन्न होते हैं वह विराट् कहे चौरासी लाख योनिकी देहको विराट् मुनियोंने कहा है. जो देह जीवसे चैतन्य हो रही है जीवसेही नष्ट होजाती हैं. सब इन्द्रियें अथवा देवता देहमें ही रहते हैं, परंतु जीव विना देह नष्ट होजाती हैं, ऐसी देह विराट्रूप विराट् जीवको पाकर चैतन्य होगई ॥

उठा, चक्षु इन्द्रिय सहित भास्करने नेत्रोंमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा ॥ ६२ ॥

श्रोत्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥
त्वचं रोमभिरौषध्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६३ ॥

श्रोत्रके संग दिशायें कानमें घुसीं तौ भी विराट् न उठा, फिर रोमसहित सब औषधियें त्वचामें प्रविष्ट हुईं तौ भी विराट् न उठा ॥ ६३ ॥

रेतसा शिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥
गुदं मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥ ६४ ॥

वीर्यसहित जलने शिश्नमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा, अपानसहित मृत्यु गुदामें आई तौ भी विराट् न उठा ६४ ॥

हस्ताविंद्रो बलेनैव नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥
विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६५ ॥

इन्द्रने बलसहित हाथोंमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा गतिसहित विष्णुने चरणोंमें प्रवेश किया तौ भी विराट् सावधान न हुए ॥ ६५ ॥

नाडीर्नद्यो लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥
क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिंधुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६६ ॥

नदियें रुधिर सहित नाडियोंमें घुसीं तौ भी विराट् न जागा, क्षुधा तृषा सहित समुद्रने उदरमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न चेता ॥ ६६ ॥

हृदयं मनसा चंद्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥

बुद्ध्या ब्रह्मापि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥
रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६७॥

मनसहित हृदयमें चन्द्रमाने प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा, फिर बुद्धिसहित ब्रह्मा हृदयमें पैठे तौ भी विराट् न उठा, अभिमानसहित रुद्रने हृदयमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा ॥ ६७ ॥

चित्तेन हृदयं चैत्त्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ॥
विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥ ६८ ॥

चित्तसहित चित्तके स्वामी क्षेत्रज्ञ ईश्वरने जब हृदयमें प्रवेश किया, उसी समय विराट्पुरुष जलमेंसे उठ बैठा ॥६८॥

यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेंद्रियमनोधियः ॥
प्रभवंति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥ ६९ ॥

जैसे सोयेहुए पुरुषको प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि जिनके विना कोई अपने पराक्रमसे उठा नहीं सक्ता, इसीप्रकार इस विराट्पुरुषको चेतन क्षेत्रज्ञके विना कोई नहीं उठासका ॥६९॥

तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ॥
भक्त्या विरक्त्याज्ञानेनविविच्यात्मनि चिंतयेत्७०

इति श्रीकपिलगीतायां तत्त्वसमाम्नाये
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सब जीव २ के प्रति इन ईश्वरके योगसे उत्पन्न जो बुद्धि-की प्रवृत्ति होती है, उससे विरक्ति और विरक्तिसे एकान्तमें बैठकर ज्ञान उत्पन्न करै, फिर पुरुषको चाहिये कि, देहमें आत्माका विचार करै, जब आत्माका विचार निश्चय होजा-य, तब नित्यप्रति उसीका चिन्तवन किया करै ॥ ७० ॥

इति श्रीकपिलगीताभाषाटीकायां चतुर्विंशतितत्त्ववर्णनं नाम द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

श्रीभगवानुवाच ॥

प्रकृतिस्थोपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ॥
अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥ १ ॥

भगवान् कपिलदेवजी बोले कि, यद्यपि पुरुष प्रकृतिमें स्थित है तौ भी प्रकृतिके गुणोंके करेहुए दुःखसुखा-दि गुणोंमें लिप्त नहीं होता, क्योंकि पुरुष निर्विकारी होनेसे अकर्ता होनेसे निर्गुण होनेसे जलमें सूर्यकी परछांईकी नाईं लिप्त नहीं होता और उसीभाँति पुरुष देहके गुणोंसे भी लिप्त नहीं होता ॥ १ ॥

स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ॥
अहंक्रियाविमूढात्मा कर्तास्मीत्यभिमन्यते ॥ २ ॥

वही पुरुष जब गुणोंमें सब ओरसे आसक्त होजाता है

तब कहता है कि देह मैं हूं इसप्रकार अहंकारसे विमूढ बनकर फिर कहता है कि, आत्माका कर्ता मैं हूं, इसप्रकार सदा अभिमानी बना रहता है ॥ ❀ ॥ २ ॥

---

* **शंका**—जीव निश्चयकरके अभिमानी होजाता है. सो भगवान्की इच्छासे या अपनी इच्छासे ? भ्रष्ट होजाता है. यह हमारे मनमें बडी भारी शंका है.

उत्तर—निरंजन जो जीव है सो न तौ अपनी इच्छासे अभिमानी होता है और न भगवान्की इच्छासे अभिमानी होता है. खोटी इन्द्रियोंकी नित्य संगति करता है उसी कुसंगतिसे मूर्ख होकर अभिमानी होजाता है; जैसे वारुणीके पात्रमें गंगाजल रक्खा जाय तौ गंगाजल मदिरा नहीं होगा जलही रहैगा, परंतु मनुष्य मदिरा जानकर उसको छुवेंगे नहीं. तथा गंगाजलके बर्तनमें मदिरा रखदियाजायगा तौ मदिरा गंगाजल नहीं होगा मदिराही हैरगा परंतु मनुष्य यही जानैंगे कि इस पात्रमें गंगाजल है, इसीप्रकार गंगाजलकी समान जीव मदिराके पात्र सरीखे खोटी इन्द्रियोंकी संगतिसे अभिमानी होजाता है.

यहां एक दृष्टान्त है कि "एक लकडी वेचनेवाला लकडियोंका वोझा शिरपर धरे आता कहींसे था, गर्मीका समय था, एक इमलीके पेडके नीचे कूंवेके समीप टंढी छाया देखकर बैठगया, उसी समय एक सिपाही घोडेपर सवार घोडेको कुदाता नचाता दौडाता चला आता था. सवारको देख लकडहारा मनमें कहने लगा कि, सब अवस्था लकडीही वेचने २ बीती और खोपडीमें गढे पडगए, जो परमेश्वर मुझकोभी घोडा देता तौ मैंभी इसीप्रकार सवार होकर नचाता कुदाता। इसी मनोरथमें शरीरको पवन जो लगी तौ नींद आगई, फिर स्वप्नमें क्या देखताहै कि उस बोझका घोडा बनाकर स्वप्नमें सवार होकर कुदानेको ज्यों झटका दिया त्योंही झट कुवेमें जापडा, ज्यों त्यों करके पथिकोंने उसको निकाला तौ वह बोला, कि आज मैंने अपने मनमें घोडेपर चढनेको संकल्प कियाथा

तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्य निर्वृत ॥
प्रासंगिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ ३ ॥

इसी अभिमानसे बेवश होकर और सुख न पाकर सत् असत्मिश्रित योनियोंमें प्रकृतिके संगके कर्म और दोषोंसे संसारके चक्रमें घूमते रहते हैं. कभी जन्म कभी मरण ॥ ३ ॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥४॥

विचारकी रीतिसे देखिये तो संसार कोई वस्तु ही नहीं और विषयवासना करनेवालोंसे संसार छूटताही नहीं; स्वप्न सब प्रकारसे झूठा है तो भी उस स्वप्न देखनेवाले मनुष्यके वे अनर्थ उससमय नष्ट नहीं होते, अनर्थका आगम भोगनाही पड़ता है ॥ ४ ॥

अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि ॥
भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम् ॥ ५ ॥

इसलिये कुकर्मियोंके मार्गसे आसक्त चित्तको सहज २ में तीव्र भक्तियोग विरक्तिसे अपने वशमें करै ॥ ५ ॥

—तब यह कुदशा हुई और जो नित्य घोडेपर चढते होंगे न जानिये उनकी क्या गति होगी ? कदाचित् वह तो घडी २ नदी और कुवोंमें गिरते होंगे, इसलिये मैं अपनी लकडीही बेचनेमें प्रसन्न हूं मुझको किसी घोडेपोडेसे प्रयोजन नहीं" अनर्थ आगमन होनेसे उसको उसका फल मिला, इसीप्रकार विषयोंके ध्यान करनेसे प्राणी संसारके बन्धनसे नहीं छूटता ॥

यमादिभिर्योगपथैरभ्यसञ्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥
मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च ॥ ६ ॥

श्रद्धासहित योगमार्गादिकोंसे अभ्यास करता है और मुझसे निष्कपट प्रीति रक्खै; मेरी कथा सुनै ॥ ६ ॥

सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसंगतः ॥
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥ ७ ॥

सब जीवमात्रमें समभाव वर्तै, किसीसे शत्रुता न करै, कुसंगका त्याग करै, ब्रह्मचर्य्यं धारण करै, मौनव्रत गहै, अपना धर्म बलवान् समझकर उसमें स्थिर रहै ॥ ७ ॥

यदृच्छयोपलब्धेन संतुष्टो मितभुङ्मुनिः ॥
विविक्तशरणः शांतो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥८॥

जो भगवत्इच्छासे मिलजाय उसीमें संतुष्ट रहै, सूक्ष्म भोजन करै, मुनियोंकी वृत्ति धारण करै, एकान्तमें वास करै शान्तिवृत्तिमें सबसे मित्रता रक्खै, सबसे दयालु हो आत्मज्ञानी रहै ॥ ८ ॥

सानुबंधे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम् ॥
ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ९ ॥

कुटुम्बसहित देहमें आसक्त न हो ज्ञानसे तत्त्वका दर्शन करै, प्रकृतिपुरुषको देखै ॥ ९ ॥

निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः ॥
उपलभ्यात्मनाऽऽत्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् १० ॥

प्रकृतिपुरुषका जब निश्चय विवेक होजाता है तब बुद्धिकी तीनों अवस्था जाग्रदादिसे निवृत्त होजाती हैं, उस समय सब अमंगलोंसे पृथक् रहे, बुद्धिसे परमात्माको प्राप्त होय जैसे चक्षुइन्द्रियद्वारा सूर्यको देखै, उसीप्रकार अपने अहं-कारावच्छिन्न आत्मासे शुद्ध आत्माको जानकर आत्माका दर्शन करै ॥ १० ॥

मुक्तलिंगं सदाभासमसति प्रतिपद्यते ॥
सतो बंधुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥ ११ ॥

इसप्रकार अभ्यास करते २ परमात्मा जो उपाधिरहित मिथ्याभूत अहंकारमें सद्रूपसे आभासमान मायाका अधिष्ठान ब्रह्मको प्राप्त होता है, सद्बन्धु, असत्के चक्षु, सर्वत्रमें परिपूर्ण हैं उनके अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं है ॥ ११ ॥

यथाजलस्थ आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते ॥
स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः १२

जैसे आकाशके भास्करका जलस्थित प्रकाश स्थलवासी पुरुषको दीखै; उसी भाँति अपने प्रकाशसे सूर्य जलस्थित प्रतिबिम्बसे स्वर्गस्थ सूर्य दीखै है ॥ १२ ॥

एवं त्रिवृदहंकारो भूतेंद्रियमनोमयैः ॥
स्वाभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥ १३ ॥

इसीप्रकार तीन वृत्तिवाला अहंकार पंच भूत इन्द्रिय मनोमय अपने प्रकाशसे इस सदाकालमें होनेवाले आभाससे सत्यदृष्टि ईश्वर लक्षित होता है ॥ १३ ॥

भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया ॥
लीनेष्वसति यस्तत्र निर्निद्रो निरहंक्रियः॥ १४ ॥

सुषुप्ति अवस्थामें निद्राके कारण पंचमहाभूत, उनके शब्दादिक सूक्ष्मरूप मन इन्द्रियें बुद्ध्यादिक इस संसारमें निद्रासे असत्में लीन होजाता है; विनिद्र होकर सब अहंकारको त्याग देता है ॥ १४ ॥

मन्यमानस्तदात्मानमनष्टो नष्टवन्मृषा ॥
नष्टेऽहंकरणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥ १५ ॥

तब आत्मा नष्ट तौ नहीं होता है, परन्तु झूठे ही नष्टवत् मानै है. जब सब अहंकार नष्ट होजाता है, तब नष्टचित्तवाला जैसे आतुर होता है वैसे ही ईश्वरके दर्शनकी इच्छा होती है ॥ १५ ॥

एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मानं प्रतिपद्यते ॥
साहंकारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥ १६ ॥

यह जीव ऐसे विचारके आत्माको प्राप्त होजाता है, अहंकारसहित द्रव्यकी जो अवस्था है वह मेरी ही कृपा है ॥ १६ ॥

देवहूतिरुवाच ॥

पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्न विमुंचति कर्हिचित् ॥
अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो १७॥

देवहूती बोली कि, हे ब्रह्मन् ! हे जनार्दन ! प्रकृति कभी पुरुषको नहीं छोडती, क्योंकि पुरुष प्रकृतिके आश्रित है और प्रकृति पुरुषके आश्रित है, इसकारण इनका बिलग होना बन नहीं सकता ॥ १७ ॥

यथा गंधस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः ॥
अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥१८॥

जैसे गंध कभी पृथ्वीसे पृथक् नहीं होती, गन्धमें पृथ्वी, पृथ्वीमें गन्ध, जलमें रस रसमें जल; इसीप्रकार परमेश्वरमें बुद्धि है. प्रकृति और पुरुषका अलग होना कठिन है ॥१८॥

अकर्तुः कर्मबंधोऽयं पुरुषस्य यदाश्रयः ॥
गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥१९॥

अकर्ता पुरुषको और जिसके आश्रयसे कर्मके बंधनमें और प्रकृति सद्गुणोंमें यह पुरुष फँसा हुआ है उसको कैवल्य-मोक्ष कैसे होसकता है ? सो कहिये ॥ १९ ॥

क्वचित्तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्बणम् ॥
अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥ २० ॥

कभी तत्त्वके विचारनेसे यह महातीव्र भय दूर होजाताहै, परन्तु उसका निमित्त नष्ट नहीं होता सो फिर पीछे यह शंका खडी होजाती है ॥ २० ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना ॥
तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसंभृतया चिरम् ॥२१॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे जननि ! कोई निमित्त हो ऐसे निमित्तके धर्म करनेसे, मन निर्मल करनेसे, बहुत दिनके शास्त्र सुननेसे. मुझमें तीव्र दृढभक्ति करनेसे ॥ २१ ॥

ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ॥
तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥ २२ ॥

तत्त्वदर्शन होता है, ऐसे ज्ञानसे, बलवान् वैराग्यसे, तप-सहित योगाभ्याससे तीव्र अपनी समाधिसे ॥ २२ ॥

प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशम् ॥
तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥ २३ ॥

इस पुरुषकी माया दिनरात जलकर शनैःशनैः छिप-जाती है. जैसे अग्नि काष्ठको जलाकर उसीमें लीन होजाती है जैसे अग्निकी आदिकारणभूत लकडी अपने आपमेंसे उत्पन्न हो अग्निसे आप जलकर भस्म हो जाती है, इसीप्रकार साधनदशामें अविद्याके कियेहुए देहादि अभिमानसे उत्पन्न ज्ञानादि साधनोंसे दह्यमान प्रकृति नष्ट होजाती है ॥ २३ ॥

भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः ॥
नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च २४

भोग भोगकर फिर अपने हृदयमें उसका दोष विचारकर उसको त्यागदिया, सो प्रकृति अपनी महिमा स्थित पुरुष ईश्व-रका कभी कुछ अशुभ नहीं करसकती ॥ २४ ॥

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥
स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ २५ ॥

जैसे सोतेहुए पुरुषको स्वप्न दिखाई देती है , जबतक वह न जागै तबतक वह स्वप्न उस मनुष्यको अनेक दुःखोंका देनेवाला है और वही स्वप्न जागनेसे जब उसको ज्ञानका संस्कार हुआ तौ कुछ भी कष्टकारी नहीं होसकता ॥ २५ ॥

एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ॥
युञ्जतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥२६॥

इसीप्रकार तत्त्वके जाननेवाले और मुझमें मन लगानेवाले आत्मारामको प्रकृति कभी अपने वशमें नहीं करसकती २६॥

यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ॥
सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥ २७ ॥

इसप्रकार अनेक जन्मके साधन करनेसे ब्रह्मलोकतक सब पदार्थोंके त्यागनेसे मेरे पूर्णभक्त मेरी अनंतभक्तिसे जब मेरे यथार्थरूपका ज्ञान उसको होजाता है तब अध्यात्मज्ञानमें उसकी प्रीति होती है, तब आत्मज्ञानसे मुनि होता है ॥ २७ ॥

मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा ॥
निश्श्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् २८॥

मेरा भक्त मेरी अतीव कृपासे मोक्षका भागी होता है, मोक्षदायक मेरा स्थान कैवल्य जिसका नाम मेरे आश्रयहै उस वैकुण्ठको ॥ २८ ॥

प्राप्नोतीहांजसा धीरः स्वदृशा छिन्नसंशयः ॥
यद्गत्वा न निवर्त्तेत योगी लिंगाद्विनिर्गमे ॥ २९ ॥

इस संसारमें धीर अनायाससे प्राप्त होतेहैं. अपनी दृष्टिसे सब संशय नष्ट होजाता है. इस शरीरको त्यागकर वहां जाताहैं जहांके गये योगीजन फिर लौटकर संसारमें नहीं आते॥ २९॥

यदा न योगोपचितासु चेतो मायासु सिद्धस्य विषज्जतेंग ॥ अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्यादात्यंतिकी यत्र न मृत्युहासः ॥ ३० ॥

इति श्रीकपिलगीतायां मोक्षरीतिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे माता ! जब योगीजनोंका योग बढता है तब मायाकी वृद्धि होनेसे अणिमादिक सिद्धियाँ भी बढतीहैं, उनके बढनेका कुछ और प्रयोजन नहीं है केवल वह विघ्न करनेके लिये आती हैं जो उससमय भक्तका चित्त उनमें आसक्त न हुआ तौ उसको मेरी अनन्य अत्यन्त सुखदायिनी व अनपायिनी गति प्राप्त होती है. जहां मृत्युका कुछ भय नहीं॥ ३०॥

इतिकपिलगीताभाषाटीकायां मोक्षरीतिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

१ कवित्त—कामी है न यती है न, सूम है न सती है न, राजा है न रंक है न तन है न मन है ॥ सोवै है न जागै है न पीछे है न आगे है न, गृही है न त्यागीहै न घरहै न वनहै ॥ स्थिर है न डोलै है न मौन है न बोलै है न, बँधो है न खुलोहै न स्वामी है न जन है॥ ऐसो जब होवै तब मेरी गति जानै तब, सुन्दर कहत ज्ञानी ज्ञानशुद्ध बनहै ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

श्रीभगवानुवाच ॥

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ॥
मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥ १ ॥

भगवान् बोले कि, हे नृपात्मजे ! अब बीजसहित योगका लक्षण कहता हूं, कि जिस विधिके अनुष्ठानसे प्रसन्न होकर मन सत्पथमें लगताहै ❀ ॥ १ ॥

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ॥
दैवाल्लब्धेन संतोषआत्मविच्चरणार्चनम् ॥ २ ॥

अपनी सामर्थ्यभर स्वधर्मका आचरण करै; पापसे अलगरहै, जो अपने भाग्यके अनुसार प्राप्त हो उसीमें संतोषकरै, आत्मज्ञानी पुरुषोंके चरणारविन्दोंका पूजन करै ॥ २ ॥

--*शंका--कपिलदेवजी अपनी मातासे बोले कि, हे माता ! बीजसहित योगका लक्षण मैं तुमसे कहूंगा, ऐसा वचन अपनी मातासे कहा. परंतु योगका वीजसहित लक्षण क्यों नहीं कहा ? सो योगके वीजका लक्षण क्या है ?

उत्तर--सज्जनोंकी संगतिमे प्रेमकरना. और दुष्टजनोंकी संगतिमें प्रेम न करना. ऐसाविचारकर नेत्रोंसे नित्य भगवान्में स्नेह देखना और दुष्टकर्मको बुरा देखना. यही योगके वीजका लक्षण है. और कपिलदेवजी पहिलेसे जानतेथे कि, हमारी माता ज्ञानमें कच्ची है इसलिये योगके बीजका लक्षण कहनेको प्रस्तुतथे पीछे संगति कही परंतु फिर भलीभाँति जानलिया कि, हमारी माता ज्ञानमें बडी पक्की है. इसलिये योगके बीजके लक्षण कहनेकी क्या आवश्यकता है ॥

ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा ॥
मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥ ३ ॥

लौकिकसम्बन्धी धर्मसे निवृत्त रहै, मोक्षधर्ममें प्रीति करै, परिमित और महाशुद्ध भोजन करै, परिमित इसको कहतेहैं पेटके दो भाग तो अन्नसे भरै और एकमें जल, चौथा वायुके आने जानेको खाली रक्खै, एकान्तस्थानमें वास करै. जहां किसीप्रकारकी बाधा न हो ॥ ३ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः ॥
ब्रह्मचर्यं तपःशौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥ ४ ॥

जीवहत्या न करै,सत्य बोलै, चोरी न करै,जितनेमें अपना प्रयोजन सिद्ध हो उतनाही संचय करै,अधिक न करै, ब्रह्मचर्यधारण करै,तप करै, शौचसे रहै, वेदका पाठ करै,श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके चरणारविंदकी वंदना करै ॥ ४ ॥

मौनं सदासनजयः स्थैर्यं प्राणजयः शनैः ॥
प्रत्याहारश्चेंद्रियाणां विषयान्मनसा हृदि ॥ ५ ॥

वृथा न बोले,मौनधारण करै, आसनको जीतनेका अभ्यास करै, स्थिर रहै, शनैः २ प्राणको जीतै, मनको और इन्द्रियोंको विषयसे खींचकर हृदयमें रक्खै ॥ ५ ॥

स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम् ॥
वैकुंठलीलाऽभिध्यानं समाधानं तथात्मनः ॥ ६ ॥

सब प्राणोंके स्थान जो मूलाधारादिक हैं उनमेंसे एकदेशमें मनसहित प्राणको धारण करै, और त्रिलोकीनाथ भगवान्की लीलाका ध्यान करै, और मनको आत्माकार करै ॥ ६ ॥

एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ॥
बुद्ध्या युंजीत शनकैर्जितप्राणो ह्यतंद्रितः ॥ ७ ॥

इनसे और इनके अधिक और उपायोंसे और साधनोंसे मनको जीतै, और असत् मार्गोंमें जो मन लगा है उसको धीरे २ बुद्धिसे जीतै, और प्राणको जीतै, निरालस्य होकर रहै ॥ ७ ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् ॥
तस्मिन्स्वस्तिसमासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥ ८ ॥

पवित्र देशमें रहै, विशेष करके प्रथम तो आसनको जीतै फिर कुशाओंपर कृष्णचर्म, उसके ऊपर वस्त्र बिछाकर मांगलिक आसन मारकर बैठे, शरीरको सीधा रखकर प्राणको वश करनेका अभ्यास करै यह स्वस्तिकासन है ॥ ८ ॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुंभकरेचकैः ॥
प्रतिकूलेन वा चित्तं यथास्थिरमचंचलम् ॥ ९ ॥

पूरक, कुंभक, रेचकसे प्राणके मार्गको शोधै, और प्राणायामोंके उलटे क्रमसे चित्तका शोधन करे, जिससे यह चित्त फिर चंचल न होय ऐसा स्थिर करै ॥ ९ ॥

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ॥
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम्॥१०॥

जिसने श्वास जीते ऐसे योगियोंका मन थोडे ही दिनोंमें शुद्ध होजाता है जैसे पवन अग्निसे थमाहुआ सुवर्ण, मलको त्यागकर निर्मल होजाता है ॥ १० ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान् ॥
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ११॥

प्राणायामोंसे तौ वात, पित्त, कफके मलोंको दूर करे, और धारणासे सब पापको दूर करै और प्रत्याहारसे विषयोंको दूर करै, और ध्यानसे रागादिकोंको दूर करै ॥११॥

यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम् ॥
काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाऽग्रावलोकनः १२॥

जब योगके प्रभावसे मन शुद्ध होजाय तब सावधानतासे भगवत्के स्वरूपका ध्यान करै और अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहै ॥ १२ ॥

प्रसन्नवदनांभोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥
नीलोत्पलदलश्यामं शंखचक्रगदाधरम् ॥ १३ ॥

वारिजसमान जिनका प्रसन्न वदन, अरुणकमलवत् नेत्र, नीलकमलदलसम श्याम वर्ण, शंख, चक्र, गदा धारणकर रहे हैं, यह ध्यान करै ॥ १३ ॥

लसत्पंकजकिंजल्कपीतकौशेयवाससम् ॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकंधरम् ॥ १४ ॥

सुन्दरसरसिजकेसरवत् पीताम्बर पहिरे, श्रीवत्स वक्ष-स्थलमें देदीप्यमान है, कौस्तुभमणि मुक्तामयमाला कंठमें विराजमान है ॥ १४ ॥

मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ॥
परार्ध्यहारवलयकिरीटांगदनूपुरम् ॥ १५ ॥

मत्तभ्रमरोंकी ध्वनि जिसपर होरही ऐसी मनमोहनी सोहनी वनमाला धारण किये हैं, और अमूल्यहार, कंकण, किरीट, भुजबंद, नूपुर जिनके चरणारविन्दोंमें दीप्यमान हैं ॥

कांचीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयांभोजविष्टरम् ॥
दर्शनीयतमं शांतं मनोनयनवर्धनम् ॥ १६ ॥

क्षुद्रघंटिकाओंसे शोभित कटिपश्चात् भाग है, भक्तोंके हृदयकमलमें जिनका आसन है, दर्शन करने योग्योंमें दर्शन योग्य शान्तचित्त मन और नयनोंका आनन्द बढानेवाला जिनका मनोहर स्वरूप है ॥ १६ ॥

अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् ॥
संतं वयसि कैशोरे भक्तानुग्रहकातरम् ॥ १७ ॥

अत्यन्त शोभायमान जिनका दर्शन है, सब लोकवासी जिनको नमस्कार और दंडवत् करते हैं. जिनकी किशोर अवस्था है, अपने अनुचरोंपर अनुग्रह करनेमें नित्यप्रति कुशल हैं ॥ १७ ॥

कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ॥
ध्यायेद्देवं समग्रांगं यावन्न च्यवते मनः ॥ १८ ॥

तीर्थरूप यश जिनका कीर्तन करने योग्य है, पुण्यश्लोकोंमें यश करनेवाले भगवान्के अंगोंका ध्यान करै, अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहै, जबतक कि, मन उस बांके बिहारीकी मूर्तिमें लय न होजाय ॥ १८ ॥

स्थितं व्रजंतमासीनं शयानं वा गुहाशयम् ॥
प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥ १९ ॥

दर्शनके योग्य जिनकी अलौकिक लीला है, ऐसे घटघटवासी वृन्दावननिवासी, सुखरासी मदनमोहनकी चाहै विराजमानमूर्तिका चाहै फिरते चलते स्वरूपका, चाहै शयन करतीहुई श्यामसुन्दरकी मूर्तिका, चाहै खडीहुई प्रतिमाका शुद्ध चित्तके भावसे ध्यान करै; उनकी अद्भुत लीला देखने ही योग्य है ॥ १९ ॥

तस्मिँल्लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ॥
विलक्ष्यैकत्र संयुज्यादंगे भगवतो मुनिः ॥ २० ॥

मुनि लोग उनको चित्तमें स्थान देकर, सब अवयव सुन्दर स्थित ईश्वरका दर्शनकर भगवान्के एक अंगमें अपने मनको लगावै ॥ २० ॥

संचिंतयेद्भगवतश्चरणारविंदं वज्रांकुशध्वजसरोरुहलांछनाढ्यम् ॥ उत्तुंगरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयांधकारम् ॥ २१ ॥

पहिले तौ वज्र, अंकुश, ध्वज पद्म इन चिह्नोंसे युक्त उठेहुए अरुणशोभित नखमंडलकी किरणोंसे ध्यान करनेवाले भगवान्के चरणकमलका ध्यान करै ॥ २१ ॥

यच्छौचनिस्सृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ॥ ध्यातुर्मनश्शमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविंदम् ॥ २२ ॥

जिनके चरणप्रक्षालनरूप गंगाजलतीर्थके मस्तकपर धारण करनेसे मंगलमय भूतनाथ और अत्यन्त मंगलरूप होगए. इसीप्रकार जिनके चरणचिह्नरूप वज्रसे ध्यान करनेवालोंके पापरूप पर्वत चूर्ण करनेवाले भगवान्के पादाम्बुजका बहुत कालतक ध्यान करै ॥ २२ ॥

जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याऽखिलस्य सुरवंदितया विधातुः ॥ ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्संलालितं हृदि विभोरभवस्य कुर्यात् ॥ २३ ॥

सब जगत्का विधान करनेवाला, विधाता ब्रह्माकी माता, साक्षात् लक्ष्मी; सब देवता सदा प्रेम प्रीति सहित दिनरात

जिसके चरणारविन्दकी वन्दना करतेहैं, कमलसे जिसकेनेत्र, वह महालक्ष्मी अजन्मा विभुके ललित उरु जानुद्वय, अपने ऊरुवोंपर रखकर पल्लवकी कांतिसे बडी लालित्यताके साथ जिनका सेवन करती हैं.उन भवभंजन भगवान्के दोनों घुटनों-पर्यंत युगुल जंघाओंका हृदयमें ध्यान करै ॥ २३ ॥

ऊरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमानावोजोनिधी अत-सिकाकुसुमावभासौ ॥ व्यालंबिपीतवरवाससि वर्तमानकांचीकलापपरिरंभिनितंबबिंबम् ॥ २४ ॥

फिर गरुड़जीकी भुजाओंमें शोभित महापराक्रमी अलसीके कुसुमसमान दोनों ऊरुओंका चित्तमें ध्यान करै,फिर अति-लम्बा पीताम्बर झमझमाताहुआ, उसमें वर्तमान कांचीक-लापका मिलना, ऐसे भगवान्के शोभायमान नितम्बका ध्यान करै ॥ २४ ॥

नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं यत्रात्मयोनि-धिषणाखिललोकपद्मम् ॥ व्यूढं हरिन्मणिवृष-स्तनयोरमुष्य ध्यायेद्द्वयं विशदहारमयूखगौ-रम् ॥ २५ ॥

फिर चतुर्दश भुवनोंके कोप जिनके हृदयमें विराजमान, जहां आत्मयोनि ब्रह्मका स्थान है,सब लोकात्मक कमल जि-समें उत्पन्न हुआथ उसके नाभिसरोवरका ध्यान करै; फिर उठेहुए मरकतमणिके श्रेष्ठ विशद हारोंकी चटकीली किरणोंसे

गौरवर्ण भगवान्के दोनों स्तनोंका ध्यान करै जिनकी कैसी सुन्दरशोभा है ? ॥ २५ ॥

वक्षोऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानम् ॥ कंठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥ २६ ॥

सर्वश्रेष्ठा महाविभूति श्रीलक्ष्मीजीका वासस्थान, महात्माओंके मन और नेत्रोंका परम सुखदायक वक्षस्थलका मनमें ध्यान करै,सब लोक जिनको नमस्कार करते हैं, उन प्रभुके कंठमें जो कौस्तुभमणि भूषण भूषित है उसकी शोभाका चित्तमें ध्यान करै ॥ २६ ॥

बाहूंश्च मंदरगिरेः परिवर्तनेन निर्णिक्तबाहुवलयान धिलोकपालान् ॥ संचिन्तयेद्दशशतारमसह्यतेजः शंखं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥२७॥

फिर मंदराचलके घूमनेसे घिसकर जो उज्ज्वल होगये हैं, बाहुओंके कंगन, जिनमें लोकपाल देवता वास करते हैं, उन भुजाओंका ध्यान करै,फिर जिसका अनंततेज सह्या न जाय, ऐसे हजार धारवाले सुदर्शनका चिंतवन करै, फिर जिन भगवान्के हस्तकमलमें राजहंसवत् शंख विराजमान है, उसका ध्यान करै ॥ २७ ॥

कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धामरा-
तिभटशोणितकर्दमेन ॥ मालां मधुव्रतवरूथ
गिरोपघुष्टां चैत्त्यस्य तत्त्वममलं मणिमस्य
कंठे ॥ २८ ॥

फिर वासुदेव भगवानकी प्यारी कौमोदकी गदा, जो कि शत्रुवीरोंके रक्तकी कीचमें लिपटीहुई है उसका स्मरण करै भ्रमरोंके झुंडके झुंड जिसपर गुंजार रहे हैं उस भगवान्की वनमालाका ध्यान करै जो जीवात्माकी परमतत्त्व निर्मल कौ-स्तुभमणि भगवान्के कंठमें दीप रही है उसका ध्यान करै २८

भृत्यानुकंपितधियेह गृहीतमूर्त्तेः संचिंतयेद्भग-
वतो वदनारविंदम् ॥ यद्विस्फुरन्मकरकुंडलव-
ल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥ २९ ॥

अपने भृत्योंके ऊपर कृपा करके अपनी बुद्धिसे जिन्होंने मूर्तिमान् अवतार धारण किये हैं, उन भगवान्के मुखकमलका ध्यान करै कि जिसपर दमकते हुये मकराकार कुण्डलोंके प्रकाशसे निर्मलकपोलोंकी शोभा और उदार जिसमें नाक है ॥ २९ ॥

यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं भूत्या
स्वया कुटिलकुंतलवृंदजुष्टम् ॥ मीनद्वयाश्रय
मधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतंद्रित उल्ल
सद्भ्रु ॥ ३० ॥

श्रीजीका जहां स्थान अपने वैभवकी शोभासे भ्रमरोंसे सेव्यमान कुटिलकुंतलसमूहयुक्त हो मीनसमानका तिरस्कार करनेवाले, मनोमय निरालसभ्रू जिसमें ऐसे श्रीभगवान्‌के नेत्र-कमलका ध्यान करै ॥ ३० ॥

तस्यावलोकमधिकं कृपयाऽतिघोरतापत्रयोप-शमनाय विसृष्टमक्ष्णोः ॥ स्निग्धस्मितानुगु-णितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरंविपुलभावनया गुहायाम् ॥ ३१ ॥

फिर अपनी कृपासे महाघोर अत्यन्त भयानक त्रयतापके नाश करनेके लिये नेत्रोंसे निकस मनोहर मुसकान संयुक्त ब-हुत प्रसन्न होनेवाले प्रसादयुक्त अत्यन्त भावनासे हृदयमें अनंतकालतक भगवान्‌के अवलोकनका ध्यानकरै ॥ ३१ ॥

हासं हरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरवि-शोषणमत्युदारम् ॥ संमोहनाय रचितं निजमा-ययाऽस्य भ्रूमंडलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥३२॥

अवनतोंके सब तीव्रशोकसे प्रगटहुये अश्रुसागरके शोषण-हारे अतिउदार श्रीभगवान्‌के मंदहास्यका ध्यान करै, फिर भगवान्‌ने अपनी मायासे जो मकरध्वजकेभी मोहनेके लिये रचाहैं और जो मुनिमनोंको मोहित करनेवाले ऐसे भ्रूमण्डलका ध्यानकरै ॥ ३२ ॥

ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठभासाऽरुणायिततनु द्विजकुंदपंक्ति ॥ ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्याद्रर्यार्पितमना न पृथग् दिदृक्षेत् ॥ ३३ ॥

ध्यानका स्थान प्रहसित (अधिकहास) का ध्यान करै और अधरहोठकी कान्तिसे लाल झांईके पड़नेसे कुन्दकलीके दाँतोंकी पंक्ति भी कुछ २ अरुणाईसी लिये ज्ञात होती है उनका अपने हृदयाकाशमें ध्यान करै, इसप्रकार प्रेमरसीली विष्णुकी भक्तिसे उसीमें मनको लगावै, उसके अतिरिक्त और किसी वस्तुके देखनेकी चाहना न करे. चित्तको उसीमें स्थिर रक्खै ॥ ३३ ॥

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ॥ औत्कंठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानस्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुंक्ते ॥ ३४ ॥

इसप्रकार भगवान्‌का ध्यान करते २ भावमें हरिमें लोभकर भक्तिसे द्रवीभूत हृदयमें अत्यन्त आनन्द प्रफुल्लित हो जाय और भगवत्‌से मिलनेकी अति उत्कण्ठासे अश्रुपात करके बारंबार पीड़ित धीरसे चित्तरूप मत्स्यवेधन काँटेके सदृश उसे शनैः शनैः भगवत्‌के अंगसे ध्यान न्यून करदे ॥ ३४ ॥

मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथाऽर्चिः ॥ आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेकमन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ३५॥

मुक्तोंके आश्रय जब निर्विषय विरक्तमन सहसा सूर्यकी सदृश मोक्षको प्राप्त होजाता है, जब पुरुष आत्माको आनंदमय एकरूप देखै है. तब संसारसे निवृत्त होजाता है ॥३५॥

सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ॥ हेतुत्वमप्यसति कर्तरि दुःखयोर्यत्स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥ ३६ ॥

इसप्रकार मनकी अंतिमनिवृत्तिसे सुखदुःखसहित ब्रह्म रूपमें स्थित हुआ योगी, सुखदुःखका भोगना, जो पहिले अपने स्वरूपमें विदित होताथा, उसे अविद्यासे उत्पन्नहुए अहंकारमें त्याग देताहै, अर्थात् सुखदुःखका भोक्तापनके असत् अहंकारमें ही है, मुझमें नहीं है, ऐसे देखता है, क्योंकि आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष दीखता है, अर्थात् होचुका है ॥ ३६ ॥

देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं वासो यथा परिवृतं मदिरामदांधः ॥ ३७ ॥

पहिले कहेहुए लक्षणसे सिद्ध हुआ योगी अपनी देहको भी नहीं देखता, फिर सुखदुःखको क्योंकर देखै ? जैसे मद-मत्त मनुष्योंको पहिनेहुए वस्त्रका ज्ञान नहीं रहता इसी प्रका-र योगीको अपने शरीरका ज्ञान नहीं रहता, मत्तपुरुषका वस्त्र प्रारब्धसे जाता रहै, वा रहजाय उसको उसकी सुधि नहीं रहती, इसीप्रकार योगीका देह चाहै आसनपर रहै वा चलाजाय उसे उसकी सुधि नहीं रहती ॥ ३७ ॥

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारंभकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपंचमधिरूढ-समाधियोगः स्वाप्नं पुनर्नभजते प्रतिबुद्ध-वस्तुः ॥ ३८ ॥

प्रारब्धके अधीन हुआ उसका देह जबतक उसका प्रेरक होवै तबतक इन्द्रियसहित जीता रहताहै, परन्तु समाधिपर्य्य-न्त योगको प्राप्त हुआ आत्मस्वरूपका ज्ञाता योगी स्वप्नअव-स्थाकी देहके समान, मैं और मेरा, करके नहीं जानता ॥ ३८ ॥

यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथङ् मर्त्यः प्रतीयते ॥
अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेः पुरुषस्तथा ॥ ३९ ॥

जैसे पुत्र धनसे पुरुष अपने आपको अलग मानता है, ऐसें ही आत्मभाव मानकर अभिमान देहादिकसे ईश्वरको पृथक् मानता है, ॥ ३९ ॥

यथोल्मुकाद्विस्फुलिंगाद्धूमाद्वाऽपि स्वसंभवात् ॥
अप्यात्मत्वेनाभिमतात्तदग्निः पृथगुल्मुकात् ४० ॥

जैसे अज्ञानी मनुष्य ज्वलितकाष्ठसे कणका धूम होता ऐसा पृथक् मानते हैं, परन्तु वास्तवमें दाहक और प्रकाशक अग्निसे अलगहै, इसप्रकार सब ब्रह्ममय ही है ॥ ४० ॥

भूतेंद्रियांतःकरणात् प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ॥
आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ४१ ॥

जैसे पंचभूत इन्द्रियें अन्तःकरण प्रधान जीवसंज्ञासे आत्मा अलग है, इसीप्रकार द्रष्टा भगवान् ब्रह्म पृथक् है ४१ ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥
ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥ ४२ ॥

जैसे सब प्राणिमात्रमें आत्मा व्यापै है और सब जीवमात्र आत्मामें व्यापैहैं, इसीप्रकार सब पदार्थोंमें मैं हूं और मुझमें सब पदार्थ हैं ऐसे अनन्यभावकरके सब प्राणियोंमें तदात्मतासे देखते हैं, वे सिद्ध हैं ॥ ४२ ॥

स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ॥
योनीनां गुणवैषम्यात्तथात्मा प्रकृतौ स्थितः ॥ ४३ ॥

जैसे अपनी योनि काष्ठमें एक अग्निकी ज्योति योनियोंके गुणविषमतासे दीर्घ ह्रस्व दृष्टि आती है, इसीप्रकार आत्मा एक होनेपरभी प्रत्येक देहके गुणोंकी विषमतासे दीर्घ ह्रस्वादि भेदके कारण अनेकप्रकारका दृष्टि आता है ॥ ४३ ॥

तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ॥
दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४४ ॥

इति श्रीकपिलगीतायां साधनानुष्ठानं
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इसलिये सत् असत् आत्मिक विचारमें आवै ऐसी इस अपनी प्रकृतिको भगवान्की कृपासे जीतकर अपने स्वरूपमें स्थित होते हैं और कुमतिके कपट, मोहमें फँसकर खोटे संगसे जीवका नाश होजाता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीकपिलगीताभाषाटीकायामष्टांगयोगध्यानयो-
गवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

देवहूतिरुवाच ।

लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥
स्वरूपं लक्ष्यतेऽमीषां तेन तत् परमार्थिकम्॥१॥

देवहूती बोली कि, हे प्रभो ! महदादिकोंका लक्षण और प्रकृतिपुरुषका स्वरूप परमार्थिक जैसा होय और जिस प्रकारसे इनका ज्ञान होय सो कहो ॥ १ ॥

---

१ कवित्त—कुमतिसे यश जाय, गर्वसे लक्षण जाय, कुनारीसे कुल जाय, योग जाय संगसे ॥ भूखसे मर्यादा जाय, लडायेसे पुत्र जाय, सोचसे शरीर जाय, शीलता कुसंगसे ॥ कपटसे धर्म जाय, लोभसे बडाई जाय, माँगनेसे मान जाय, पाप जाय गंगसे ॥ क्रोधसे तपस्या जाय, अनीतिसे राज्य जाय, वंशकी प्रशंसा जाय, वीरमुरै जंगसे ।

यथा सांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते ॥
भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥२॥

हे भगवन् ! जैसे सांख्यशास्त्रमें इनकी मूल आपने कहीं, परन्तु उसके कहनेका अभिप्राय भक्तियोगहै, इसकारण भक्तियोगका मार्ग मुझसे विस्तारसहित आप कहिये ॥ २ ॥

विरागो येन पुरुषो भगवन्सर्वतो भवेत् ॥
आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा लोकसंसृतीः ॥३॥

हे जगत्पते ! जिससे इस पुरुषको सब ओरसे वैराग्य उत्पन्न होजाय. ऐसा लोकका अनेकप्रकारका आवागमन है सो कहो ॥ ३ ॥

कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते ॥
स्वरूपं बत कुर्वंति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥ ४ ॥

और ईश्वररूप कालका स्वरूप कहो, जिसके भयसे लोग कुशलकर्म करतेहैं ॥ ४ ॥

लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुषश्चिरं प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ॥ श्रांतस्य कर्मस्वनुविद्धया धिया त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥ ५ ॥

झूठे, अभिमानी, शरीरादिक पदार्थोंमें अहंकार करनेवाले, अज्ञानी, कर्मासक्त, निराधार, अहंकारमें बहुत दिनसे सोयेहुए, कर्म करते २ श्रान्त होगये, ऐसे शठलोगोंके चैतन्य

करनेके लिये और उनकी निर्मलबुद्धि करनेके अर्थ योग-शास्त्रका प्रकाश करनेको आप इस जगत्में सूर्यरूप उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥

मैत्रेय उवाच ।

इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनंद्य महामुनिः ॥
आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणाऽर्दितः ॥ ६ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, हे कुरुश्रेष्ठ विदुर ! इसप्रकार माताके बहुत मीठे वचनोंकी सराहना कर, महामुनि कपिलजीने अत्यन्त प्रसन्न हो प्रीतिसे भरे करुणासे पीडित मीठे वचन कहे ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ॥
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥ ७ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे जननी ! भक्तियोग अनेक प्रकारकाहै और बहुत मार्गोंसे प्रकाशित होताहै, पुरुषोंकी प्रकृति सतरजतमोगुणके होनेसे उनके संकल्पमें भेद पड-जाताहै ॥ ७ ॥

अभिसंधाय यद्धिंसां दंभं मात्सर्यमेव वा ॥
संरंभी भिन्नदृग् भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥ ८ ॥

संकल्पसे, हिंसासे, दंभसे, मत्सरतासे, क्रोधसे, भिन्न-दृष्टिका भाव मुझमें करते हैं, वह तामसी भक्तिहै ॥ ८ ॥

विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा ॥
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥ ९ ॥

विषयभोगकी चाहना कर यश ऐश्वर्यके लिये जो अर्चादिकमें मेरी भावना करतेहैं वह राजसी भक्ति है ॥९॥

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम् ॥
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥१०॥

पाप नाशनेके उद्देशसे अथवा सिद्धिसाधनेके उद्देशसे मूर्ति आदिकमें जो कर्म करै अथवा जो पूजन करै उसमें यह मानै कि, भगवत्की आज्ञाहै इसलिये पूजनकेही योग्यहै, ऐसे भावसे जो भक्ति करतेहैं, वह सात्त्विकी भक्तिहै इसका प्रयोजन यह है कि श्रवण कीर्तनादिक जो नवधा भक्ति है, वही फल देनेके लिये तीन प्रकारकी तामस, तीन प्रकारकी राजस, तीन प्रकारकी सात्त्विकभक्ति होनेसे सत्ताईस (२७) प्रकार की हुई, और सुननेसे एक २ में नौ नौ भेद होजाते हैं; तव इक्यासी (८१) प्रकारकी होजाती है यह सगुण-भक्तिके भेद हैं ॥ १० ॥

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ॥
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगांभसोऽम्बुधौ ॥११॥

मेरे गुणके श्रवणमात्रसे मैं जो अन्तर्यामी हूं मुझमेंसे कभी न निकलै, इसप्रकार मनकी गति लगावै, जैसे, गंगाजल धाराप्रवाहसे समुद्रमें लय होजाताहै, फिर नहीं लौटता, ऐसेही ईश्वरमें लीन होजाय भेद न रक्खै ॥ ११ ॥

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ॥
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥

निर्गुणभक्तियोगका यह लक्षणहै पुरुषोत्तमके फलानुसन्धान भेदभावरहित भक्ति करै, श्रीपतिके अतिरिक्त दूसरेकी आशा न करै ॥ १२ ॥

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ॥
दीयमानं न गृह्णंति विना मत्सेवनं जनाः ॥१३॥

मेरे साथ एकलोकमें वास समान ऐश्वर्य सदा निकट रहैं, मेरे समान रूप होजाय, एक रूप होजाय इन पाँचों मुक्तियोंको मैं देता हूँ, परन्तु मेरे भक्त मेरी सेवाके अतिरिक्त और कुछ नहीं ग्रहण करते ॥ १३ ॥

स एव भक्तियोगाख्य आत्यंतिक उदाहृतः ॥
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १४ ॥

यह अत्यन्त निर्गुणभक्ति योगभक्ति है, जिससे तीनों गुणोंका उल्लंघन करके मेरे भावको प्राप्त होता है, इससे अधिक और दूसरी भक्ति नहीं ॥ १४ ॥

निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा ॥
क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः॥१५॥

सुन्दर नित्य नैमित्तिक महास्वधर्मके अनुष्ठान करके निष्काम नारदपंचरात्रतन्त्रोक्त पूजा करनेसे और हिंसारहित पूजा करनेसे अन्तः करण शुद्ध होजाता है ॥ १५ ॥

मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवंदनैः ॥
भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासंगमेन च ॥ १६ ॥

मेरी प्रतिमाके दर्शन स्पर्शन पूजा स्तुति प्रणामादिकसे सब जीवमात्रमें मेरी भावनासे, धैर्य्यसे, वैराग्यसे हृदय पवित्र होता है ॥ १६ ॥

महतां बहुमानेन दीनानामनुकंपया ॥
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥ १७ ॥

महात्मालोगोंका आदर सन्मान करनेसे, दीनोंपर दया करनेसे, अपने समान कक्षामें मित्रता करनेसे, यम नियम करनेसे शरीर शुद्ध होजाताहै ॥ १७ ॥

आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसंकीर्तनाच्च मे ॥
आर्जवेनाऽऽर्यसंगेन निरहंक्रियया तथा ॥ १८ ॥

ब्रह्मविद्याके सुननेसे, मेरे नामोंका उच्चारण और संकीर्तनसे, साधुसन्तोंकी संगति करनेसे, अहंकार त्यागनेसे चित्त शुद्ध होता है ॥ १८ ॥

मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्धआशयः ॥
पुरुषस्यांजसाऽभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥१९॥

जो पुरुष मेरे धर्मके गुणोंका साधन करता है, उसका हृदय शुद्ध होजाता है, केवल मेरे गुणोंके सुननेसेही पुरुषको मेरा स्वरूप विनाही श्रम प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

यथा वातरथो घ्राणमावृंक्ते गंध आशयात् ॥
एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥२० ॥

जैसे सब स्थानोंमें पवनद्वारा गंध आवैहै उसी प्रकार भक्तियोगमें लगाहुआ अविकार मन आत्मामें आप आ मिलता है ॥ २० ॥

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा ॥
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडंबनम् ॥२१॥

सब जीवमात्रमें भूतात्मा मैं सदा स्थिर रहता हूँ मेरी अवज्ञा करके जो पुरुष केवल मूर्तिका पूजन करते हैं, वह विडम्बनामात्र है ॥ २१ ॥

यो मां सर्वेषु भूतेषु संतमात्मानमीश्वरम् ॥
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः २२॥

मैं सबके शरीरमें रहनेवाला हूँ, मुझे छोडकर जो मनुष्य मूर्तिकी अर्चा करते हैं, वे अपनी मूर्खतासे राखमें हवन करते हैं ❀ ॥ २२ ॥

---

* शंका—कपिलदेवजी अपनी मातासे बोले कि, हे जननि ! सब चराचर जीवोंमें हम स्थित हैं. हमको तो कोई जानता नहीं हमारा अनादर करके प्रतिमाका पूजन करते हैं उन लोगोंको कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता. जैसे राखमें हवन करनेसे कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं होता, प्रतिमाका पूजन वेदके वाक्य मानके होता है, ऐसे वेदोंके वचनका छेदन मूर्ख भी नहीं करते, और कपिलदेवजीने बडे ज्ञानी होकर वेदोंके वचनका छेदन क्यों किया ? कि प्रतिमाका पूजन नहीं करना ?

उत्तर—सब देहोंमें परमात्माको मानना, कि परमात्मा सब देहोंमें स्थित है, यह ज्ञानियोंका कर्म है, ऐसा माननेवाले प्राणी प्रतिमाको नहीं मानते, यह कर्म अज्ञानियोंके लिये नहीं है, अज्ञानियोंका कर्म प्रतिमाका पूजन है, कपिलदेवजीकी माता ज्ञानी हैं तथा कपिलदेवजी भी ज्ञानी हैं, इसलिये ऐसे ब्रह्मज्ञानके वाक्य कहे है, कुछ अज्ञानियोंके लिये नहीं कहा ।

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ॥
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शांतिमृच्छति ॥ २३

सब प्राणियोंकी देहमें जो मैं विराजमान हूँ, जो मुझसे द्वेष रखताहै, अभिमान रखताहै, भेदभाव रखता है ऐसे उन प्राणियोंका मन कभी शान्त नहीं होता ॥ २३ ॥

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे ॥
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः॥२४॥

हे मातः ! ऊँचेनीचे द्रव्योंसे, क्रियासे, अर्चासे, मैं सन्तुष्ट नहीं होताहूँ, और जो जीवोंका अनादर करता है उसपर मैं प्रसन्न नहीं ॥ २४ ॥

अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ॥
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ २५ ॥

सब जीवमात्रमें परमात्मा मैं हूँ, जबतक मेरा अनुभव हृदयमें प्रकाश न होय, तब तक मनुष्योंको मूर्ति आदिकका पूजन करना चाहिये ॥ २५ ॥

आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यंतरोदरम् ॥
तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥२६ ॥

आपमें और मुझमें जो प्राणी अंतर समझते हैं, उन भिन्न दृष्टिवालोंको मैं सदा कष्ट देता रहताहूँ ॥ २६ ॥

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ॥
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥२७॥

इसलिये मुझको सब जीवोंमें और भूतोंमें विराजमान जानकर सब प्राणियोंका अन्तर्यामी मैं हूँ मुझसे दान मान मित्रता रखकर भेद दृष्टिसे न देखना चाहिये ॥२७॥

जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ॥
ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेंद्रियवृत्तयः ॥ २८ ॥

हे शुभे ! अचेतन जीवोंमें सचेतन अर्थात् प्राणधारी जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे प्राणवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चित्तवृतिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे इन्द्रियवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥

तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः ॥
तेभ्यो गंधविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥ २९ ॥

उनमें स्पर्शज्ञानी श्रेष्ठ हैं, उनमें रसज्ञानी मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं, उनमें गंधज्ञानी भ्रमरादिक श्रेष्ठ हैं, उनमें शब्दज्ञानी सर्पादिक श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥

रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतो दतः ॥
तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥ ३० ॥

उनमें रूपवेत्ता काकआदिक श्रेष्ठ हैं, उनमें दोनों ओर दन्तवाले श्रेष्ठ हैं, उनमें बहुत पांववाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चौपाये श्रेष्ठ हैं,उनसे दोपदवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥

ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः ॥
ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥ ३१ ॥

द्विपदोंमें चारों वर्ण श्रेष्ठ हैं, उनमें ब्राह्मणवर्ण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणोंमें वेदपाठी श्रेष्ठ है, वेदपाठियोंमें अर्थके जाननेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥

अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान्स्वकर्मकृत् ॥
मुक्तसंगस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥ ३२ ॥

अर्थ जाननेवालोंमें संशयच्छेदी मीमांसा करनेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे स्वकर्म कर्ता श्रेष्ठ हैं, उनसे मुक्तसंगी श्रेष्ठ हैं, उनसे ईश्वरके धर्मकर्ता श्रेष्ठ हैं ॥ ३२ ॥

तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियाऽर्थात्मा निरंतरः ॥
मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ॥
न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥ ३३ ॥

जिस पुरुषने अपने धर्म कर्मका फल और अपना शरीर मेरे अर्पण करदिया है उनमें वह श्रेष्ठ है, मुझमें जिसने अपनी आत्मा समर्पी मुझमें ही सब कर्मोंका संन्यास करता है उस समदृष्टि महात्मासे कोई अधिक श्रेष्ठ नहीं ॥ ३३ ॥

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहुमानयन् ॥
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥ ३४ ॥

ऐसे समदर्शीके समान कोई दूसरा नहीं है समदर्शी मनुष्य वैकुण्ठको जाता है वह आदिपुरुष अविनाशी सबके घट २ में विराजमान है, इसलिये सब जीवमात्रको अत्यन्त आदरसम्मानसे मनहीमनमें दंडवत् प्रमाण करे ॥ ३४ ॥

भक्तियोगश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः ॥
ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥ ३५ ॥

हे मनुसुते ! भक्तियोग और योग दोनों मैंने तुमसे कहे. इन दोनोंमेंसे एकका भी साधन करै तो वह पुरुष परमेश्वरके निकट पहुँच सक्ता है ॥ ३५ ॥

एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्म विचेष्टितम् ॥ ३६ ॥

सबका स्वामी प्रकृतिपुरुषरूप और उनसे पृथक् जो परमात्मास्वरूप है, परम प्रधानपुरुष उसीको देव कहते हैं, जिसमें यह जीव अनेक अनेक प्रकारकी योनियोंको भोगता है ॥ ३६ ॥

रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते ॥
भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशांभयम् ॥ ३७ ॥

रूपभेदके आश्रय होनेसे दिव्यकाल कहलाता है, जिससे भिन्नदृष्टिवालेको महदादि भूतोंका भय होता है ॥ ३७ ॥

योंतः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्त्यखिलाश्रयः ॥
स विष्णवाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः ॥ ३८ ॥

सर्वाधार और यज्ञोंके फलदायक जो ईश्वर जीवोंके भीतर प्रविष्ट होकर सबजीवोंको भक्षण करते हैं, वही विष्णु है वही अधियज्ञ है, वही काल है, वही वशी करनेवालोंका प्रभु है ३८

न चाऽस्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बांधवः ॥
आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमंतकृत् ॥ ३९ ॥

इसकालका न तौ कोई प्यारा है, न कोई शत्रु है, न कोई बांधव है, अप्रमत्त होकर प्रमत्तपुरुषोंका अन्त करै है॥ ३९॥

यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥
यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात् ॥ ४० ॥

जिस कालके भयसे पवन चलता रहता है, मार्तण्ड तपा करता है, इन्द्र वर्षा करता है,तारागण प्रकाश करते हैं॥ ४०॥

यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिः सह ॥
स्वेस्वे कालेऽभिगृह्णंति पुष्पाणि च फलानि च४१॥

जिसके भयसे वनस्पति, वृक्ष, लता, औषधी सहित अपने २ समयपर पुष्प और फल उत्पन्न करती हैं ॥ ४१ ॥

स्रवंति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यंतः ॥
अग्निरिंधे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात्॥ ४२ ॥

जिसके भयसे नदियें दिनरात बहती रहती हैं, समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़सकते, अग्नि प्रज्वलित होता रहता है, पर्वतोंसहित भूमि डूबती नहीं ॥ ४२ ॥

नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः ॥
लोकं स्वदेहं तनुते महान् सप्तभिरावृतम्॥ ४३ ॥

जिसकी आज्ञासे यह आकाश सब श्वास लेनेवालोंको सावकाश देता है, महतत्त्व सात आवरणयुक्त इस लोकमें इस देहका विस्तार करता है ॥ ४३ ॥

गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् ॥
वर्ततेऽनुयुगं येषां वश एतच्चराचरम् ॥ ४४ ॥

जिसके भयसे गुणाभिमानी देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, स्वर्गादिकमें युग २ वर्तमान रहते हैं; और बारंबार संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार करते रहते हैं ॥ ४४ ॥

सोऽनंतोंतकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥
जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनांतकम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीकपिलगीतायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सो अनंत अंत करनेवाला काल अनादि, आदिकरनेवाला है, अव्यय है, जनोंसे जनोंको जन्माता है, परन्तु कालकोभी मृत्युसे संहार करता है, वह परमात्मा कालरूप अपनी इच्छानुसार काम करता है ॥ ४५ ॥

इति श्रीकपिलगीताभाषाटीकायां बहुविधभक्तियोग-
वर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

कपिल उवाच ।

तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ॥
काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥ १ ॥

कपिलदेवजी बोले कि, इस कालकरालके पराक्रमको

यह जीव नहीं जानसक्ता, जैसे पवनसे चलायमान मेघमाला वायुके विक्रमको नहीं जानसक्ती ॥ १ ॥

यंयमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे ॥
तंतं धुनोति भगवान्पुमान् शोचति यत्कृते ॥ २ ॥

अपने शरीरके सुखके लिये वह जीव अनेक दुःख करके जिस वस्तुका संग्रह करता है; उस वस्तुको काल भगवान् नाश करदेते हैं, जिसके लिये रातदिन प्राणी शोचमें पडा रहता है ॥ २ ॥

यदध्रुवस्य देहस्य सानुबंधस्य दुर्मतिः ॥
ध्रुवाणि मन्यते मोहाद्गृहक्षेत्रवसूनि च ॥ ३ ॥

शोचमें क्यों पडा रहता है ? कि, जो वस्तु नाशवान् हैं, यह मूर्ख परिवारसहित देहको धनको खेतको मोहसे इन नाशवान् वस्तुओंको यह अज्ञानी ध्रुवसमान स्थिर मानताहै ॥ ३ ॥

जंतुर्वै भव एतस्मिन्यांयां योनिमनुव्रजेत् ॥
तस्यांतस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥ ४ ॥

निश्चयकरके यह जो जीव संसारमें जिस जिस योनिमें जाताहै; उसी उसी योनिमें आनंदसे रहता है; परन्तु कभी वैराग्य धारण नहीं करता ॥ ४ ॥

नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ॥
नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः॥ ५ ॥

नरकवासी जीव भी अपने शरीरके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते, नरककोही आनंदभवन मानते हैं; देवकी मायासे जीव ऐसे विमोहित होरहे हैं ॥ ५ ॥

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबंधुषु ॥
निगूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते ॥ ६ ॥

और शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, पशु, गज, वाजी, बंधुजनोंमें अपना हृदय अत्यन्त फँसा है, सो अपने आपको बहुत बुद्धिमान् और सुखनिधान मानता है ॥ ६ ॥

संदह्यमानसर्वांग एषामुद्वहनाधिना ॥
करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥ ७ ॥

और अपने कुटुंबियोंके पालन पोषणके संदेहमें सब शरीर, उसका सरदी गरमीसे जलता गलता रहता है, तौभी वह मूढ बुरे हृदयसे सदा बुरे २ कर्म करता ही रहता है ॥ ७ ॥

आक्षिप्तात्मेंद्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ॥
रहो रचितयाऽऽलापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ८॥

खोटी वेश्यादिक स्त्रियोंकी एकान्तमें मैथुनादिक मायासे शरीर इन्द्रिय सब विक्षिप्त रहती हैं और तोतली रसभरी बालकोंकी मधुरवाणीके साथ झूंठी बातें कर २ उन्मत्तसा बनारहता है ॥ ८ ॥

गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतंत्रेष्वतंद्रितः ॥
कुर्वन् दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥ ९ ॥

धनके लोभसे धर्म करै उसमें भी अधर्म सदा दुःख, ऐसे घरमें आलस्य तज दुःख दूर करनेके लिये उपाय करते हैं और गृहस्थीको सुखके समान मानते हैं ॥ ९ ॥

अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान् ॥
पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् १० ॥

और महाहिंसा करके इधर उधरसे धन इकट्ठा कर, परिवारका पालन पोषण करते हैं, और आप उनकी जूँठन खा खाकर अपनी अवस्था पूरी करते हैं, और अंत समय नरकमें जाते हैं ॥ १० ॥

वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनःपुनः ॥
लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ११ ॥

जब उनकी जीविका बंद होजाती है, तब उसके उपार्जनके लिये सहस्रों उपाय करते हैं, इसीप्रकार वारंवार वह महा-लोभी, वह निर्धन यत्न करता जब मनमें हार मानता है तब पराये धनके लेनेकी इच्छा करता है ॥ ११ ॥

कुटुंबभरणाकल्पो मंदभाग्यो वृथोद्यमः ॥
श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायञ्छ्वसिति मूढधीः १२ ॥

जब कुटुम्बके पालन पोषणकी सामर्थ्य न रही और

उद्यम निष्फल होनेलगा, तब वह मंदभागी मंदबुद्धि कृपण[1] अत्यन्त शोचवश होकर लम्बे २ श्वास लेनेलगता है ॥ १२॥

एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तदा ॥
नाद्रियंते यथापूर्वं कीनाशा इव गोजरम्॥ १३ ॥

इस प्रकारका जब वह प्राणी कुटुम्बके पालन पोषणमें सामर्थ्य नहीं करता, तब उसके कुटुम्बीलोग पहिलेकेसा उसका आदर सत्कार नहीं करते, जिसप्रकार कीनाश बूढे बैलका आदर नहीं करते ॥ १३ ॥

तत्राप्यजातनिर्वेदो भ्रियमाणः स्वयंभृतैः ॥
जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ १४ ॥

इतनेपर भी ज्ञान और वैराग्य उन मूर्खोंको नहीं होता अब वह वृद्ध मनहीमन कहता है कि,हाय ! जिनका लालन पोषण मैं करता था, आज वह मेरा पालन करते हुए कडुए वचन कहते हैं; हा ! जराके आनेसे मेरा रूप कुरूप होगया, मरनेके सम्मुख घरमें घुटना पडा ॥ १४ ॥

---

१ कवित्त—दाताघर जाती तौ कदर ऐसी नाहिं पाती, मेरे घर आई तौ बधाई बांट बावरी ॥ खाने दशखानेते खानेमें छिपाय राखूं, होउ ना उदास, मेरो यही चित्तचावरी ॥ खाऊं न खवाऊं मरजाऊं तौ सिखाय जाऊं, नाती और पूतनको अपनो स्वभावरी ॥ दमडी न देहुं कभी, स्वप्नमें भिखारिनको, कृपण कहै लक्ष्मीसे बैठी गीतगावरी ॥

आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ॥
आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ १५ ॥

घरके लोग जब भोजन करचुकें हैं तब अनादरसे कुछ खानेपीनेको श्वानकी समान दूरसे टुकडा डालते हैं, रोग सब शरीरमें प्रगट होगए, मंदाग्निसे भोजन भी थोडा खाया जाता है, उठने बैठनेकी सामर्थ्य नहीं रही. नेत्रोंसे दीखना बंद होगया ॥ १५ ॥

वायुनोत्क्रमतोत्तारकफसंरुद्धनाडिकः ॥
कासश्वासकृतायासः कंठे घुरघुरायते ॥ १६ ॥

जब मृत्युका समय आया तब वायुसे नेत्र फटनेलगे, पुतलियें ऊपरको चढगईं; आंसू निकलने लगे, नाडियें रुक गईं, कास श्वासके कियेहुए क्लेशोंसे कंठमें कफ घिरने लगा ॥ १६ ॥

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबंधुभिः ॥
वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥१७॥

उस समय शोचवश हो भाईबन्धु चारों ओरसे घेरकर बैठ जाते हैं और बहुत ही पुकार २ कर बूझते हैं कि, हे पिता ! हे दादा ! कुछ धन धराधराया हो तो बतादो, अब तुम्हारा चित्त कैसे है ? वह तौ कालकी फाँसीमें फँसाहुआ है, कंठ रुका हुआ है, अपना सुख, दुःख मुखसे कुछ नहीं कहसक्ता, तब लोग फिर उसको समझाते हैं, कि

आप कुछ द्रव्य बतावैं तो हम गाय मँगायके आपपर पुण्य करावैं ॥ १७ ॥

एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेंद्रियः ॥
म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः ॥ १८ ॥

जिसने कुटुम्बके भरनेमें और चारों ओरसे उनके पालन करनेमें कसर न की, अपनी इन्द्रियोंको न जीता, वह नष्ट बुद्धि, वह अज्ञानी रोते हुए अपने बन्धुबान्धवोंमें मरगया ॥ १८ ॥

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ॥
स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुंचति ॥ १९ ॥

उस समय उसके लेनेके लिये, क्रोधसे लाल २ नेत्र किये, महाभयानक यमराजके दो दूत आये, दंडपाश उनके हाथोंमें देख त्रासके मारे वह पापी जीव विष्ठा मूत्र कर रहता है ॥ १९ ॥

यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् ॥
नयतो दीर्घमध्वानं दंड्यं राजभटा यथा ॥ २० ॥

वह दूत उसे उसीसमय बरवश पकड गलेमें फाँसी डाल

कवित्त—द्रव्यहीसों पितापर पुत्रको सनेह होत, द्रव्यहीसों पुण्य और द्रव्य हीसों नाम हैं ॥ द्रव्यहीसों देवी और देवता प्रसन्न होत, द्रव्यहीसों जगत्माहिं होत सारा काम है ॥ द्रव्यही सों धर्म अर्थ मनोरथ पूरे होत, द्रव्यहीसों धर्म अर्थ काम परम धाम है ॥ द्रव्यहीकी खातर औ चातर होत द्रव्यहीसों, शालिग्राम द्रव्यहीकी महिमा सब ठाम है ॥

उस नरदेहमेंसे उस जीवको निकाल, यातनादेह (जो यमलोकमें कष्ट भोगनेको नियत है) रख, हाथ बांधकर, राजाके दूत जैसे अपराधीको वरबश पकड़ व घसीटकर लेजाते हैं, उसीभाँति उस जीवको वडी दूरके मार्गको लेजाते हैं ❀ ॥ २० ॥

तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः ॥
पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥२१॥

उन दूतोंके मारने पीटनेसे, उसका हृदय फटजाताहै, देह कांपने लगती है, गिरते, पडते, मार्गमें कुत्ते फाडनेको

❀ **शंका**—कपिलदेवजीने अपनी मातासे कहा कि, यमराजके दूत यमकी पाशसे जीवके गलेमें बांधकर वसीटते घसीटते यमपुरीमें जीवको लेजाते हैं; यह वडे सन्देहकी वात है कि, जीवके गला नहीं है फिर विना देहके गला कैसे होसक्ता है ? जिसमें पास डालकर जीवको यमपुरीको यमदूत लेजाते हैं.

उत्तर—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन पांचके अंशसे चौरासीलाख योनियोंकी देह वनी है, परन्तु प्रत्यक्ष दीखनेमें वायुसे देह वर्द्धित होती है. पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश ये चार तो देहमें प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आते. और पवन प्रत्यक्ष मुखमें, नाकमें गुह्यमें, चलता हुआ दिखाई देता है. जबतक देहमें वायु चलती रहती है तवतक देह जीवित कहलाती है. और पवनके वन्द होते ही देहको मृतक कहते हैं. जीवकी वार्ताको महात्मा पुरुषोंने और कविजनोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया है. परंतु सव शास्त्रोंका भी ऐसा मत है कि, इस शरीरमें पवन जो है वही जीव है. वायुके अंशसे देहके सब अंग चैतन्य रहते हैं, इसलिये यमदूत पवनरूप जीवके गलेमें यमके पाशसे बांधकर उसी वायुरूप जीवको लेजाते हैं

दौडते हैं, उस समय वह प्राणी आर्त होकर अपने किये पापोंको याद करता है ॥ २१ ॥

क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तवालुके ॥ कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥ २२ ॥

मार्गमें क्षुधातृषा सताती है, भोजन देखनेको भी नहीं मिलता, ऊपरसे सूर्यकी गर्मी पड़ती है, नीचे धरती जलतीहै फिर तपतीहुई वालूपर तपना पड़ता है; जब कहीं थककर बैठ जाता है, और नहीं चलता तब यमदूत बड़े निर्दयीपनसे कोडे मारते हैं, मार्गमें न कहीं ठहरनेका ठिकाना है, न कहीं पानी पीनेको मिलता है, उस समय मुखसे हाय २ निकलती है॥ २२॥

तत्रतत्र पतञ्छ्रांतो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ॥ यथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥२३॥

और जहां तहां थकित होकर गिरपड़ता व मूर्छित होजाता है, फिर उठकर चलनेलगता है, इसीप्रकार उस पापी जीवको महा अन्धकार व्याप्त मार्गमें होकर यमदूत यमपुरीको लेजातेहैं ॥ २३ ॥

योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः ॥ त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः २४॥

निन्यानवे हजार (९९०००) योजन मार्ग चार घडीमें उस महापपीको लेजाते हैं और पापीको छःघडीमें यमपुर लेजातेहैं, वहां अनेक २ प्रकारकी यातना भोगनी पडतीहै २४

आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ॥
आत्ममांसादनं क्कापि स्वकृत्तं परतोऽपिवा ॥२५॥

कहीं तो उस जीवकी देह लकडियोंसे जलाते हैं, कहीं इसीका मांस इसको भक्षण करातेहैं, कहीं आपही अपने मांससे अपना पेट भरताहै ॥ २५ ॥

जीवतश्चांत्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ॥
सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥ २६ ॥

कहीं यमलोकमें श्वान गीध जीतेकी आंतें निकाल २ लेजाते हैं, कहीं साँप बिच्छू डाँसादिककी पीडासे दुःख पाकर अपने कर्मोंका किया फल भोगताहै ॥ २६ ॥

कृंतनं चावयवशो गजादिभ्योऽभिदापनम् ॥
पातनं गिरिशृंगेभ्यो रोधनं चांबुगर्तयोः ॥ २७ ॥

कहीं उसका शरीर काट काट कर खण्ड २ करतेहैं, कहीं हाथी दांतोंपर धर २ कर घुमा २ कर पटक देते हैं, कहीं पाँवोंसे दबाय २ शुण्डसे उठाय चीर २ कर बगेल देतेहैं, कहीं पाँवोंसे पीस २ कर मारतेहैं, कहीं पर्वतोंके शृङ्गोंसे पटक देतेहैं, कहीं पानीमें डुबो देतेहैं, कहीं गढेमें बन्द कर देतेहैं ॥ २७ ॥

यास्तामिस्रांधतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः ॥
भुंक्ते नरो वा नारी वा मिथः संगेन निर्मिताः॥२८॥

जो तामिस्र, अन्धतामिस्र और रौरवादिक नरकोंकी पीड़ाहै, सो नर नारी भोगतेहैं, जो पूर्व कुकर्म कियेहैं उनका फल उनको भोगना पड़ताहै ॥ २८ ॥

अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ॥
या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः॥२९॥

हे मातः! यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है. क्योंकि नरक और स्वर्ग दोनों यहीं दिखाई देतेहैं जो जो कष्ट नरकमें सहने पड़तेहैं वे संसारके मध्य भी देखनेमें आते हैं ॥ २९ ॥

एवं कुटुंबं बिभ्राण उदरंभर एव वा ॥
विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुंक्ते तत्फलमीदृशम् ॥३०॥

जो प्राणी केवल इसप्रकार अपने परिवारका पालन पोषण करताहै, वा अपना उदर भरताहै उसके वह कर्म उसके साथ जातेहैं और जब मरकर यमपुरीमें जाताहै, तब उसको अपने पापका फल इकलेही भोगना पडताहै ॥३०॥

एकः प्रपद्यते ध्वांतं हित्वेदं स्वकलेवरम् ॥
कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम् ॥ ३१ ॥

इस अपने शरीरको छोडकर एकही जीव नरकको जाताहै, भृत्यद्रोहके लिये जो पाप किये हैं, वे सब वहीं भोगने पडते हैं ॥ ३१ ॥

दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् ॥
भुंक्ते कुटुंबपोषस्य हृतवित्त इवातुरः ॥ ३२ ॥

दैवके प्राप्त कियेहुए, उसको अकेलेमें पुरुष सब कष्ट भोगताहै, कुटुम्ब पालनेका फल यहां भोगता है, और जिसका धन लुटजाताहै ऐसे पुरुषकी नाईं वह आतुर होजाता है॥३२॥

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुंबभरणोत्सुकः ॥
याति जीवोंधतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥३३॥

केवल अधर्मसे जो परिवार पालनेमें तत्पर है वह प्राणी अन्धतामिस्रतमका जो स्थान है उसमें जाता है * ॥३३॥

अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ॥
क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥ ३४ ॥
इति श्रीकपिलगीतायां कर्मविपाको नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

नरलोकसे जो नीचे यातनादिक नरक हैं, उन सबको क्रमसे भोगकर जब पाप क्षीण होता है, तब फिर शुद्ध होकर मनुष्यदेह पाता है ॥ ३४ ॥

इति कपिलगीताभाषाटीकायां कामिनां नरकादिक-
वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

* राग बिहाग ॥ तब्रते गोविंद क्यों न सँभारे॥ अपने लोभ लाभके कारण चलत न कबहूं हारे॥ १॥ अपने एक जीवके कारण जीव सहस दश मारे॥ उन जीवनपर क्यों छूटोगे दावनगीर तुम्हारे॥ २ ॥ भूमिपरे तब सोंच न लागे भये कठिन दिनभारे ॥ सूरदास कहै कंठ पकरि तब निकसत प्राण दुवारे॥३॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

श्रीभगवानुवाच ॥

कर्मणा दैवनेत्रेण जंतुर्देहोपपत्तये ॥
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतः कणाश्रयः ॥ १ ॥

श्रीभगवानजी बोले कि, दैवप्रेरित पिछले जन्म कर्मोंके प्रभावसे देहप्राप्तिके लिये यह जीव पुरुषके वीर्यकणमें आश्रय लेकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है ❀ ॥ १ ॥

कललं त्वेकरात्रेण पंचरात्रेण बुद्बुदम् ॥
दशाहेन तु कर्कंधूः पेश्यंडं वा ततः परम् ॥ २ ॥

एक रातमें तौ शुक्र शोणित मिलता है, पांच रातमें बुद्-बुदासा होता है, दश दिनमें बेरके समान हो जाता है, फिर मांसपिंडाकार होजाता है ॥ २ ॥

❀ **शंका**–कपिलदेवजीने अपनी मातासे कहा कि, जीव यमपुरीमें कष्टको भोग करके पुरुषका वीर्य होकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है ऐसा हम सब सुनते हैं. बडे आश्चर्यकी बात है कि, वायुरूप जीव सो शीशे और रांगकी नांई गलकर जलरूप कैसे होगया ?

उत्तर-वायुरूप जीवको नित्य सब पदार्थोंमें जाना होता है. वह सब वस्तुमें चरअचरमें सूक्ष्मरूप होकर प्रवेश करता है इसीलिये वायुकी देहरूप जीव यमपुरीमें कष्ट भोगकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करताहै; क्योंकि वायु तो सबमें जब चाहै तब जैसा चाहै तैसा रूपधरके घुसजाताहै ॥

मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वंघ्र्याद्यंगविग्रहः ॥
नखलोमास्थिचर्माणि लिंगच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥३॥

एक मासमें शिर बनता है. दो मासमें बाहु, चरण आदि अङ्गके आकार बनजाते हैं. तीसरे मासमें नख, रोम, हाड, चाम, सब इन्द्रियोंके छिद्र बनजातेहैं ॥ ३ ॥

चतुर्भिर्धातवः सप्त पंचभिः क्षुत्तृडुद्भवः ॥
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥ ४ ॥

चौथे मासमें सातों धातु प्रगट होती हैं, पांचवें मासमें भूख प्यास उत्पन्न होती है, छठे मासमें जेलमें लिपटाहुआ माताकी दाहिनी कोखमें घूमा करता है ॥ ४ ॥

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसंमते ॥
शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जंतुर्जंतुसंभवे ॥ ५ ॥

माताके भोजन करेहुए अन्नादिकसे इसकी धातु बढती है और वह जीव जीवोंकी खान ऐसे २ विष्ठा और मूत्रके गर्तमें दिन रात पडारहता है "मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि, स्त्रीकी नाभिमें एक बालककी वृद्धि करनेवाली आप्यायनी नाडी बँधी है, उसीके द्वारा स्त्रियोंके खाये पीये पदार्थका रसांश उस गर्भको पहुँचता है, और वह जीव उसीको पीपीकर दिन २ बढता है" ॥ ५ ॥

कृमिभिः क्षतसर्वांगः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणम् ॥
मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥ ६ ॥

सुकुमारतासे गर्भके कीडे जो क्षण २ में उसको काटते हैं, उस कठिनपीडासे वह जीव अत्यन्त व्याकुल हो मूर्छित होजाता है, वह कृमि भूखसे व्याकुल होकर जीवको सताते हैं ॥ ६ ॥

कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ॥
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वांगोत्थितवेदनः ॥ ७ ॥

और कीडोंके काटेहुए घावोंपर जननीके खाये, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, लवण, रूखा, अम्लादि नानाभाँतिकी वस्तुओंके लगनेसे उस जीवके शरीरमें अत्यन्त पीडा होतीहै ॥७॥

उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नंत्रैश्च बहिरावृतः ॥
आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥ ८ ॥

उदरके भीतर जरायुसे बँधा और बाहर जननीकी आंतोंसे बँधा; नीचे योनिकी ओर शिर किये धनुषकी टेढी पीठ झुकाये मलमूत्रमें पडा रहता है, हाथ पाँवतक नहीं चलासक्ता, यह माताका उदर नहीं है, वंदीगृहहै ॥ ८ ॥

अकल्पः स्वांगचेष्टायां शकुंत इव पंजरे ॥
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ॥
स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विंदते ॥ ९ ॥

अपने तनकी चेष्टा करनेमें कुछ सामर्थ्य नहीं रहती, जैसे पिंजरेमें पक्षी अपना मनोरथ सिद्ध नहीं करसक्ता, वहां

इस प्राणीको पिछले सौ जन्मके कर्मोंकी याद आती है. उस समय वह दीर्घ श्वास भरकर पश्चात्ताप करताहै, और सुख तौ वहां नामकोभी नहीं मिलता ॥ ९ ॥

आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः ॥
नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥ १० ॥

गर्भकी समान दुःख तौ न हुआ न होय. सातवें महीनेमें इसको अधिक बाधा होतीहै, यह एक ठिकाने नहीं ठहर सक्ता, प्रसूतिकी वातसे सदा कांपता रहताहै और विष्ठाके कीडोंको अपना सम्बंधी समझताहै ॥ १० ॥

नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृतांजलिः ॥
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥११॥

उस समय दुःखी हो वह जीव वारंवार परम उदास हो, गर्भवासकी त्रास देख धातुवोंसे बँधाहुआ हाथ जोड व्याकुल-वाणीसे उस परमात्माकी स्तुति करता है ॥ ११ ॥

जंतुरुवाच ॥

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयाऽऽत्तनानातनो-र्भुवि चलच्चरणारविंदम् ॥ सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनु-रूपा ॥ १२ ॥

जीव कहता है कि हे शरणागतवत्सल ! विश्वके पालन करनेके लिये आप अपनी इच्छासे अनन्तरूपधारी भूमिपर

पर्यटन करतेहुये आप भगवान् वासुदेवके निर्भय चरणारविन्दके मैं शरण हूं. कि जिसने मुझपापीको यह गर्भवासकी गति दिखाई ॥ १२ ॥

यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेंद्रियाशयमयीमवलंब्य मायाम् ॥ आस्ते विशुद्धमविकारमखंडबोधमातप्यमानहृदयेवसितं नमामि १३

जो ईश्वरकी मायासे इस संसारके कर्मबन्धनसे जननीके उदरमें पंचमहाभूत इन्द्रिय अन्तःकरणरूप मायाका आश्रय लेकर कर्मोंसे बँधाहुआ हूं, अब उस विशुद्ध, अविकार, अखण्डज्ञान स्वरूपको इस तपित हृदयमें वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥

यः पंचभूतरचिते रहितः शरीरे छन्नो यथेंद्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम् ॥ तेनाऽविकुंठमहिमानमृषिं तमेनं वंदे परं प्रकृति पूरुषयोः पुमांसम्॥ १४॥

जो ईश्वर पंचभूत चिच्छरीरमें ढकाहुआ विदित होताहै, जैसाही इन्द्रिय, गुण, अर्थ, चैतन्य आत्मक मैं हूं, तैसे देह रहित होनेपरभी प्रसिद्ध महिमावाले ऋषि परमेश्वर प्रकृति पुरुषसे परे जो आप हैं सो मैं आपके चरणारविन्दोंकी वंदना वारंवार करता हूं ॥ १४ ॥

यन्माययोरुगुणकर्मनिबंधनेऽस्मिन् सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण ॥ नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमंतरेण १५॥

जिसकी मायासे अपने निजस्वरूप और ज्ञानका विस्मरण होनेसे यह जीव बहुत गुणकर्मसे करे हुए इस जगतसंबन्धी मार्गमें महाकष्टसे विचरण करताहुआ यह परमात्माकी कृपा-विना और किसी युक्तिसे अपने निजस्वरूपको नहीं जान-सक्ता, क्योंकि भगवत्कृपाविना ज्ञान नहीं होसकता और ज्ञान विना मोक्ष कहाँ ? इसलिये ईश्वरकी सेवा करनी उचित है ॥ १५ ॥

ज्ञानं यदेतददधात्कतमःस देवस्त्रैकालिकं स्थिर-चरेष्वनुवर्तितांशः ॥ तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमा-नास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥ १६ ॥

स्थावरजंगममें अनुवर्ते जिसका अंश ऐसे देव ईश्वरके विना जो यह कालका ज्ञान मुझको हुआ, इस ज्ञानको मेरे हृदयमें किसने प्रकाश किया ? वह कौन है ? इसलिये जीव कर्मपदवीमें वर्तमानके त्रयतापनाशार्थ उस परमात्माको भजता हूं ॥ १६ ॥

देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्रकूपपति-तो भृशतप्तदेहः ॥ इच्छन्नितो विवसितुं गणयन् स्वमासान् निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन् कदानु १७

माताके देहरूपी विवरमें यह तन जठराग्निसे अति तपित रुधिर विष्ठामूत्रके कूपमें अतितप्त देहसे जीव यहांसे बाहर

निकलनेके लिये अपने मासोंको गिनताहै और यह कहताहै कि हे दीनबंधो ! दीनानाथ ! इस जीवको यहांसे कब निकालोगे ॥ १७ ॥

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ॥ स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनांजलिमस्य कुर्यात् ॥ १८ ॥

हे नाथ ! दशमासको बडे अनुग्रहसे आपने ऐसी गति दी सो दीनानाथ आप अपने किये उपकारसे आपही संतुष्ट होते हो, केवल हाथ जोडनेके अतिरिक्त आपका प्रत्युपकार कौन करसक्ता है ? ॥ १८ ॥

पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ॥ यत्सृष्टयाऽऽस तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्त्यमिव प्रतीतम् ॥ १९ ॥

सात धातुका जिसके शरीर सो तौ अपने देहसंबंधी दुःख सुखहीको देखता रहता है, और मैं तो परमात्माकी कृपासे उसके दिये ज्ञानसे जो शमदम आदि सब साधन बनसकैं ऐसी स्थितिमें हूं, उन पुरुषको मैं बाहर और हृदयके भीतर चित्तकी नांई विश्वस्त मन कर देखता हूं ॥ १९ ॥

सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरंधकूपे ॥ यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत्॥२०॥

हे विभो ! सो मैं अत्यन्त दुःखवासमें बसूं हूं तौभी इस अन्धकूपसे बाहर निकलनेकी इच्छा नहीं. क्योंकि बाहिर आतेही आपकी माया व्यापैगी और जिसके संबंधसे स्त्रीपुत्रादिकके मोह ममतामें फँसना पडैगा ॥ २० ॥

तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदात्मनैव ॥ भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरंध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥२१॥

इसकारण अब मैं यहीं चित्तको स्थिर करके आपके कोमल चरणकमलोंको हृदयमें धारण करूंगा, और उनहींके अनुग्रहसे अपनी सुहृदआत्माकरके आत्माको तुमसे उद्धार करूंगा; फिर ऐसी अनेक रन्ध्रोंका शरीर जिसमें नानाप्रकारके व्यसन होतेहैं यह देह मेरा न होय और यह कठिन कष्ट मुझको भोगना न पडै, क्योंकि अब श्रीकृष्णचंद्र कृपानिधानका मैंने आश्रय लिया है ॥ २१ ॥

कपिल उवाच ॥

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ॥ सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ २२ ॥

कपिलदेवजी बोले कि इसप्रकार गर्भमें जो दशमासका

जीव स्तुति कर रहा था उसको बाहर निकालनेके लिये प्रसूतिवायुने तुरन्त उसको पृथ्वीपर फेंकदिया ॥ २२ ॥

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक्छिर आतुरः ॥
विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः॥२३॥

वायुके फेंकनेसे वह जीव नीचेको मुख किये श्वासबन्द बडे कष्टसे बाहर निकलता है और सब ज्ञान उसीसमय शमन होजाता है ॥ २३ ॥

पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ॥
रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥ २४ ॥

भूमिपर गिरकर रुधिरमूत्रमें विष्ठाकी समान चेष्टा करताहै और कहां २ करके करके वारंवार रोताहै और ज्ञानसे जाते रहनेसे विपरीत गति होजाती है ॥ २४ ॥

परच्छंदं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ॥
अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥ २५ ॥

अतिरिक्त रोनेके और वह कुछभी नहीं कहसक्ता, अपने पराये प्रयोजनको नहीं जानता, जननी जनक उसके पोषणके लिये उनको भूखा समझ कभी दूध पिलाते हैं कभी उदरकी बाधा समझ घूटी देते हैं, परंतु उसकी इच्छानुसार एक काम भी नहीं होता, जब वह भूखका मारा रोता है तब माता पिता उसकी दीठ उतारते हैं परन्तु वह किसी बातको'हां' 'ना' नहीं करसक्ता ॥ २५ ॥

शायितोऽशुचिपर्यंके जंतुः स्वेदजदूषिते ॥
नेशः कंडूयनेंगानामासनोत्थानचेष्टने ॥ २६ ॥

गरमी सरदीसे पीडित अपवित्र शय्यापर पड़ा रहता है; मच्छर, मक्खी, खटमल आदि उस जीवको काटतेहैं, उस समय न तौ वह अपने तनको खुजासक्ताहै, न उठासक्ताहै, न बैठसक्ता है, न कोई उपाय ही करसक्ता है, केवल अपनी व्यथाको आपही जानता है ॥ २६ ॥

तुदंत्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ॥
रुदंतं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥
इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगंडमेव च ॥ २७ ॥

कच्ची खालमें मच्छर डांस खटमलआदि अनेक जीव इस जीवको काटते हैं. इसीसे वह बालक बार २ रोता है, ज्ञान सब नष्ट होजाता है, जैसे और कीडे हैं. ऐसे ही इसको भी एक कीड़ा समझो ॥ २७ ॥

अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः ॥
सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ॥
करोति विग्रहं कामी कामिष्वंताय चात्मनः॥ २८॥

इसभांति अनेक भाँतिके कष्ट भोगकर फिर बालअवस्थामें पठन पाठनका दुःख सहकर अज्ञानपनसे उसको भी नहीं सीखता, खेलकूदमें ही वृथा समय खोया, जब तरुणाई आई तब मनमानी वस्तु पाकर महाअभिमानी बने लगा. अज्ञानसे क्रोध

करने और कष्ट उठाने देहके संग बढेहुए कामक्रोधके घमंडमें विषयीजनोंके संग मिलकर अपनी आत्माके नाशार्थ लड़ाई करता है ॥ २८ ॥

भूतैः पंचभिराब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ॥
अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥२९॥

पंचभूतके देहमें वारंवार यह अज्ञानी जीव अपने अभिमानसे कहता है कि, यह शरीर मेरा है, मैं इसकी पालन करता हूं, ऐसी असत् बातें ग्रहण करने लगता है. कुमतिसे सुमतिका नाश होजाता है ॥ २९ ॥

तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ॥
योऽनुयाति ददन् क्लेशमविद्याकर्मबंधनः ॥ ३० ॥

देहके अर्थ कर्म करता है, जिस कर्मसे बँधकर संसारको प्राप्त होता है, क्लेश देता हुआ जो यह शरीर है इसके लिये यह प्राणी दिन रात कर्म किया करता है और सदा जीवन मरणके चक्रमें पड़ा घूमता ही रहता है ॥ ३० ॥

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ॥
अस्थितो रमते जंतुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥ ३१ ॥

फिर शिश्न और उद्यमकारी असतोंके मार्गमें स्थित होकर उसी मार्गमें चलने लगताहै और फिर कुसंगतिके प्रभावसे उसीभांति नरक भोगताहै ॥ ३१ ॥

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ॥
शमो दमो भगश्चेति यत्संगाद्याति संक्षयम् ॥३२॥

और सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा, यश, क्षमा, शम, दम, और ऐश्वर्य, यह सब खोटे पुरुषोंकी संगतिसे नष्ट होजाते हैं ॥ ३२ ॥

तेष्वशांतेषु मूढेषु खंडितात्मस्वसाधुषु ॥
संगं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥ ३३

इसलिये अशान्त, मूढ, (अज्ञानी) खण्डित आत्मा, साधुओंके शोचके योग्य योषिताओंका क्रीड़ामृग अर्थात् नीच स्त्रियोंसे रमण, ऐसे नीच मनुष्योंकी संगति कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बंधश्चान्यप्रसंगतः ॥
योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥३४॥

और प्रसंगोंसे जैसा यह बँधे हैं उससे अधिक मोह नहीं होता जैसा कि, स्त्रियोंके संगसे होताहै और उनकी संगति करनेवाले पुरुषोंकी संगतिसे अत्यन्तही मोह बढ़ताहै और महाक्लेश होताहै ॥ ३४ ॥

प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ॥
रोहिद्भूतां सोऽन्वधावदृक्षरूपी हतत्रपः ॥ ३५ ॥

चतुरानन अपनी सरस्वतीको देख उसके वश होगये, जब सरस्वतीसे कुछ न बन पड़ा तौ मृगीका रूप धारणकर भागी, उस समय ब्रह्माजी भी लज्जा तज मृग बन उसके पीछे भागे ॥ ३५ ॥

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोन्वखंडितधीः पुमान् ॥
ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ॥ ३६ ॥

जब ब्रह्माजीसे ज्ञानीकी यह गतिहै तब उनके रचे मरीच्यादि, उनके रचेहुए कश्यपादि, उनके रचेहुए देवता मनुष्यादिमें मनमें ऐसा अखण्डित बुद्धिवाला कौनहै ? जो उसका चित्त योषितारूप मायाको देख खंडित न होय. एक श्री नरनारायणको तौ हम नहीं कहसक्ते जो सब संसारके प्रलय पालन करनेवाले मौनरूप धारण किये विरजमान हैं ॥ ३६ ॥

बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ॥
या करोति पदाक्रांतान्भ्रूविजृंभेण केवलम् ॥ ३७ ॥

मेरी स्त्रीमयी मायाका बल देखो, जो दिशाओंके जीतनेवाले शूलवीरोंकोभी केवल भ्रुकुटी चढायेके अपने पांवोंमें लुटालेती है ॥ ३७ ॥

संगं न कुर्यात् प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ॥ मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो-
वदंति या निरयद्वारमस्य ॥ ३८ ॥

कदाचित् जो मनुष्य योगका पार पानाचाहे वह स्त्रियोंका संग न करै; मेरी सेवासे आत्मज्ञानी होता है फिर वह योगीश्वर स्त्रियोंको नरकका द्वार समझताहै ॥ ३८ ॥

योपयातिशनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता ॥
तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥३९॥

परमेश्वरकी रची हुई स्त्रीरूपी माया जो धीरे २ अपने निकट आवै तौ उसको अपनी मृत्यु जानै, जैसे तृणोंसे छिपाहुआ कुआ ॥ ३९ ॥

या मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम् ॥
स्त्रीत्वं स्त्रीसंगतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥४० ॥

मुमुक्षु स्त्रीके प्रति कहतेहैं, पुरुषसमान आचरण करतीहुई मेरी माया उस वित्तके देनेवालेको पति मानै तौ उस पुरुषरूप मायाको मृत्यु समझै जिससे पूर्वजन्ममें आप पुरुष था; फिर मरणसमय स्त्रीके ध्यानमें स्त्रीधर्मको प्राप्त हुआ इस-भाँति फिर जो पुरुषधर्मको प्राप्त होगा फिर स्त्रीकी इच्छासे स्त्रीहोगा ॥ ४० ॥

तामात्मनो विजानीयात् पत्यपत्यगृहात्मकम् ॥
दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥ ४१ ॥

पति, पुत्र, गृहरूप, नारी अपनी मृत्यु जानो वधिकके गाने और वीणा बजानेसे जैसे मृगकी मृत्यु है, इसीप्रकार दैवसे प्राप्त नारीकौ अपनी मृत्यु जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन् ॥
भुंजान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥ ४२ ॥

जीवरूप अपने शरीरसे दूसरे शरीरमें एक कर्मका भोक्ता निरंतर पिछले कर्मको किया करता है ॥ ४२ ॥

जीवस्यानुगतो देहो भूतेंद्रियमनोमयः ॥
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु संभवः ॥ ४३ ॥

पंचभूत इन्द्रिय मनोमय देह जीव इसके संग है, जीवका रुकना इसका मरण है, आविर्भाव होना जीवका संभव है ४३

द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षाऽयोग्यता यदा ॥
तत्पंचत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥ ४४ ॥

द्रव्यकी प्राप्ति इसको द्रव्यसे चेष्टा अयोग्यता जब होती है, अहंकारसे, मानसे, उत्पत्ति, द्रव्य, दर्शन, ये नाश होजाते हैं ॥ ४४ ॥

यथाऽक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा ॥
तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः ॥ ४५ ॥

जैसे नेत्रोका द्रव्य अवयव दर्शनकी अयोग्यता जब होती है, तवहीं चक्षुके द्रष्टाको इनके द्रष्टृत्वाभावकी योग्यता होती है ॥ ४५ ॥

तस्मान्न कार्यः संत्रासो न कार्पण्यं न संभ्रमः ॥
बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्तसंगश्चरेदिह ॥ ४६ ॥

इसकारण न तौ मृत्युका भय माने, न जीवनकी आशा ठाने, और न जीवनके प्रयत्नोंका आदर करना चाहिये जीव गति जानकर धीर मुक्तसंग होकर इस संसारमें विचरै ॥४६॥

सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया ॥
मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥४७॥
इति श्रीकपिलगीतायां जीवगतिवर्णनं
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सुंदर देखनेवाली, योग और वैराग्यवाली सत्यविचार करनेवाली बुद्धिसे मायाविरचित लोकमें शरीरकी आसक्ति-त्यागकर ❀ आनंदसे विचरै ॥ ४७ ॥

इति श्रीकपिलगीताभाषाटीकायां पुण्यपा-
पैरिह मनुष्ययोनिसम्प्राप्तौ जीवगति-
वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

कपिल उवाच ।

अथ यो गृहमेधीयान् धर्मानेवावसन् गृहे ॥
काममर्थं च धर्मांश्च दोग्धि भूयः पिपर्ति तान्॥१॥

कपिलदेवजी बोले कि, जो कोई गृहस्थी गृहस्थके धर्मोंका आचरण घरमें बैठकर करते हैं और अर्थकामरू-

❀ शंका—योग करै यज्ञ करै वेदविधि त्याग करै, जप करै तप करै योंहि आयु खूटि हैं ॥ यम करै नेम करै तीर्थहू व्रतादि, करै, पुहुमि अटन करैं वृथा श्वास टूटि है ॥ जीवको यतन करै वनमाहिं वास करै, पचि पचि योंही मरै काल शिर कूटिहै । औरहू अनेक विधि कोटिन उपाय करै, सुन्दर कहत बिनु ज्ञान नहि छूटिहै॥

पकी कामनाके लिये उन सब कामोंको अनुष्ठान कर फिर उन सब कामोंको पूर्ण करते हैं ॥ १ ॥

स चापि भगवद्धर्मान् काममूढः पराङ्मुखः ॥
यजते क्रतुभिर्देवान् पितॄंश्च श्रद्धयाऽन्वितः ॥ २ ॥

वे मनुष्य कामनाओंमें विमूढ हो भगवद्धर्मसे पराङ्मुख हो श्रद्धालु बनकर यज्ञोंसे देवतापितरोंका यजन करते हैं २॥

तच्छ्रद्धयाऽऽक्रांतमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् ॥
गत्वा चांद्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥ ३ ॥

और जिनकी बुद्धि और श्रद्धा पितृ और देवताओंमें लग रहीहै वे मनुष्य पितृदेवताओंका व्रत कर चन्द्रलोकमें जाते है. और वहां अमृतपान कर फिर जन्म लेते हैं ॥ ३ ॥

यदा चाहींद्रशय्यायां शेतेऽनंतासनो हरिः ॥
तदा लोका लयं यांति त एते गृहमेधिनाम् ॥ ४ ॥

जब शेषशय्यापर अनंतासन नारायण शयन करतेहैं तब गृहस्थियोंके सब लोक लयको प्राप्त होजातेहैं, इससे ज्ञात होताहै कि, सकामकर्म करनेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं वे स्थिरनहीं रहते ॥ ४ ॥

ये स्वधर्मान्न दुह्यन्ति धीराः कामार्थहेतवे ॥
निस्संगा न्यस्तकर्माणः प्रशांताः शुद्धचेतसः॥५॥

जो धीरपुरुष कामअर्थके लिये स्वधर्मका आचरण

करते हैं वह सब संगत्याग सब कर्म त्याग, अत्यन्तशान्त शुद्ध चित्तसे श्रीभगवान्‌के निवासस्थानको जाते हैं ॥ ५ ॥

निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहंकृताः ॥
स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥ ६ ॥

जो पुरुष निवृत्तिकर्ममें प्रीति करते हैं, और ममता व अहंकारको त्यागकर अत्यन्त शुद्ध चित्तसे अपने स्वधर्मका सात्त्विकभावसे आचरण करते हैं वे भगवत्‌के लोकको जाते हैं ॥ ६ ॥

सूर्यद्वारेण ते यांति पुरुषं विश्वतोमुखम् ॥
परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यंतभावनाम् ॥ ७ ॥

और ऐसे विश्वमुख पुरुषको पर अपवर्गके स्वामी प्रकृतिके पति इस विश्वकी उत्पत्ति पालन संहार करनेवाले सूर्यद्वारा- करके प्राप्त होतेहैं ॥ ७ ॥

द्विपरार्धावसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ॥
तावदध्यासते लोकं परस्य परचिंतकाः ॥ ८ ॥

जो पुरुष परमेश्वर दृष्टिसे ब्रह्माका पूजन करते हैं सो ब्रह्माके सौ वर्षके अन्तमें जो प्रलय होता है तबतक वो ब्रह्माके लोकमें वास करते हैं ॥ ८ ॥

क्ष्मांभोऽनलाऽनिलवियन्मनइंद्रियार्थभूतादिभिः
परिवृतं प्रतिसंजिहीर्षुः ॥ अव्याकृतं विशति

यर्हि गुणत्रयात्मा कालं पराख्यमनुभूय परः
स्वयंभूः ॥ ९ ॥

फिर द्विपरार्ध लक्षण कालका अनुभव कर पृथ्वी जल, अग्नि, पवन, आकाश, मन, इन्द्रिय उनके अर्थ, पंचभूत, अहंकार इनसे युक्त संसारकी संहारकी इच्छा करनेवाला गुणत्रयमय शरीरवाला ब्रह्मा अपने सौ वर्षको भोगकर परमेश्वरमें लीन होजाता है ॥ ९ ॥

एवं परेत्य भगवंतमनुप्रविष्टा ये योगिनो जित-
मरुन्मनसो विरागाः ॥ तेनैव साकममृतं पुरुषं
पुराणं ब्रह्म प्रधानमुपयांत्यगताभिमानाः ॥ १० ॥

तब यहांसे दूर जाकर भगवत्के हिरण्यगर्भके सेवक योगी जन जिन्होंने पवनमनको जीत वैराग्य लिये हैं, वे अभिमान त्यागनेवाले ब्रह्माहीके साथ अमृतस्वरूप पुरुष पुराण प्रधान ब्रह्मको प्राप्त होतेहैं परन्तु ब्रह्मासे पहिले उस पदवीको नहीं पासकते क्योंकि ब्रह्माके समयतक उन देहाभिमानियोंका अभिमान निवृत्त नहीं होसकता ॥ १० ॥

अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् ॥
श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥ ११ ॥

हे प्रकाशरूपिणि ! अब सब जीवोंके हृदयकमलमें जिनका स्थान है उनका अनुभव सुन भावसे शरण जाव ॥ ११ ॥

आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः ॥
योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥ १२ ॥

स्थावरजंगमके आद्य ऋषि सहित ब्रह्माजी योगीश्वर सनकादिक सिद्धयोग प्रवर्तक भी ॥ १२ ॥

भेददृष्ट्याभिमानेन निःसंगेनापि कर्मणाम् ॥
कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभः ॥ १३ ॥

भेददृष्टि करके अभिमानसे निष्कामकर्म करके कर्ताभाव होनेसे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अपने पद सगुणब्रह्मको ॥ १३ ॥

स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्तिना ॥
जाते गुणव्यतिकरे यथापूर्वं प्रजायते ॥ १४ ॥

सो ब्रह्मा प्राप्त हो ईश्वररूप कालकरके संसारमें फिर जन्म लेकर जैसे पहिले ब्रह्मा के उसी पदवीको फिर प्राप्तहुए॥ १४॥

ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ॥
निषेव्य पुनरायांति गुणव्यतिकरे सति ॥ १५ ॥

हे सति ! धर्मविनिर्मित वे पुरुषभी पारमेष्ठ्यके ऐश्वर्यका सेवन कर फिर संसारमें जन्म लेते हैं ❋ ॥ १५ ॥

---

* शंका—कपिलदेवजी महाराजने अपनी मातासे कहा कि, सब प्राणी संसारके कार्य सिद्ध होनेके लिये दुष्ट इन्द्रियोंके वशीभूत नित्य परमात्माको भूलकर पितरोंका पूजन करते हैं. ऐसे भेदरूपवचन सांख्ययोगशास्त्रके जाननेवाले कपिलमुनिने क्यों कहे ? सांख्ययोगवाले तो सदा चरअचरको एक सम मानते हैं,

ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयाऽन्विताः ॥
कुर्वंत्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः १६॥

और जो लोग इस संसारमें आसक्तमनसे श्रद्धाकर कर्मोंमें लग रहे हैं, सब ओरसे जिनका कोई निषेध न करै ऐसे कर्म करते हैं ॥ १६ ॥

रजसा कुंठमनसः कामात्मानोऽजितेंद्रियाः ॥
पितॄन्यजंत्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥ १७ ॥

और रजोगुणसे उनके मन हरेगए कामोंमें आत्मा उनकी लगी हुई है, इन्द्रियें नहीं जीतीं हैं, घरमें जिनका मन सदा लगा रहता है और नित्य पितरोंका पूजन करते हैं ॥ १७ ॥

त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः ॥
कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥ १८ ॥

अर्थ, धर्म, काममें मनको लौलीन रखते हैं, ईश्वरसे विमुख

—उत्तर—सांख्ययोगके जाननेवाले मुनियोने कहा है कि, पितर जो हैं सो ईश्वरका रूप हैं. तब भगवान्के रूप जो पितर उसमें भेद कहा. पितर और हैं. भगवान् और हैं.

१ शंका—ऐसी दृष्टि कपिलदेवजीने क्यों करी ? **समाधान**—कपिल मुनिने ऐसे रोचक वाक्य इसलिये कहै कि किंचिन्मात्र भेद कियेसे भगवान्में मनुष्योंका प्रेम बढैगा, तौ मनुष्य सुख पावेंगे. और भगवान्की भक्तिको पुष्टताई होजायगी. जैसे किसी ग्रामको जाना होय तो भटकना क्यों ? किसीसे सुन्दर मार्ग बूझ लेना, और समझकर उस ग्रामको चलेजाना, ऐसेही वाक्य कपिलदेवजीने कहैहैं, भेदरूप वचन नहीं कहे ।

कथनीय, भगवद्यश गानेयोग्य जिनके पराक्रम हैं, उन मधु-द्वेषीकी कथामें जो विमुख हैं ॥ १८ ॥

नूनं दैवेन विहता ये चाच्युतकथासुधाम् ॥
हित्वा शृण्वंत्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः॥१९॥

और जो पुरुष नारायणकी सुधारूपी कथाको त्यागकर रसिकग्रंथोमें मन लगाते हैं और उनही चरीत्रोंको पढकर प्रसन्न होते हैं, जैसे सब उत्तमोत्तम पदार्थोंको तजकर विष्ठाभोजी विष्ठाहीसे प्रसन्न होता है ऐसे जो नीचलोगोंकी कथा कहानी सुनते रहते हैं, वे अभागी निश्चय भाग्यके मारेहुए हैं, दैवने उनको भाग्यहीन बनायाहै ॥ १९ ॥

दक्षिणेन पथाऽर्यम्णः पितृलोकं व्रजंति ते ॥
प्रजामनु प्रजायंते श्मशानांतक्रियाकृतः ॥ २० ॥

जिन्होंने गर्भसे लेकर श्मशानपर्यन्त क्रिया की है, वे पुरुष सूर्यसे दक्षिणमार्ग होकर पितृलोकको जातेहै, फिर कुछ काल व्यतीतकर अपने पुत्रादिकोंमेंही आनकर जन्म लेते है ॥ २० ॥

ततस्ते क्षीणसुकृताः पुनर्लोकमिमं सति ॥
पतंति विवशा देवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः ॥२१॥

हे सति ! पितृलोकसे जब उसका सुकृत क्षीण होताहै, तब देवतालोग उसके सब साधनोंको नष्ट करदेतेहैं, उससे वह

प्राणी विवश होकर फिर इसी मृत्युलोकमें आनकर जन्म लेताहै ॥ २१ ॥

तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् ॥
तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदांबुजम् ॥ २२ ॥

इसलिये सब भावसे परमेश्वरके पदारविन्दका भजन करना मुख्यहै, जो चरणकमल गुणाश्रय भक्तिसे भजनके योग्यहैं ॥ २२ ॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २३ ॥

भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोग करै तौ शीघ्रही वैराग्य-ज्ञान ब्रह्मदर्शन होजाता है ॥ २३ ॥

यदाऽस्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ॥
न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥ २४ ॥

जब इस भक्तका मन इन्द्रियोंकी वृत्तिकरके समान अर्थोंमें जो प्रिय अप्रियमें विषमभावको नहीं ग्रहण करता ॥ २४ ॥

स तदैवाऽऽत्मनात्मानं निस्संगं समदर्शनम् ॥
हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥ २५ ॥

जब निःसंग समदर्शी त्यागने और ग्रहण करनेसे रहित है, तब उसको आपही विदित होजाता है कि स्वयंप्रकाश आत्माका परमानंद मैंही हूं, ऐसा निश्चय होजाता है ॥ २५ ॥

ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ॥
दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥ २६ ॥

ज्ञानमात्र परब्रह्म परमात्मा ईश्वर पुरुष भगवान् देखनेके योग्य पृथक्भावोंसे एक प्रतीत होते हैं ॥ २६ ॥

एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः ॥
युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसंगस्तु कृत्स्नशः॥२७॥

इस विश्वमें समग्र योगसे योगीजन अपना अभिमत अर्थ इतनाही मानते है कि,सब प्रकारसे सबसे संग छूटजाय॥२७॥

ज्ञानमेकं पराचीनैरिंद्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ॥
अवभात्यर्थरूपेण भ्रांत्या शब्दादिधर्मिणा ॥ २८ ॥

बहिर्मुख इन्द्रियोंसे, अर्थरूपसे, भ्रांतिसे, शब्दादिधर्मसे, एक ज्ञानरूप निर्गुण बृहत्त्वादि गुणसे, विशिष्टचैतन्यब्रह्म प्रकाशै है ॥ २८ ॥

यथा महानहंरूपस्त्रिवृत् पंचविधः स्वराट् ॥
एकादशविधस्तस्य वपुरंडं जगद्यतः ॥ २९ ॥

जैसे प्रथम एकरूप परमात्माका था वही महत्तत्त्व, त्रिगुण, अहंकार, रूपहुआ, पंचभूत रूपकरके पांचप्रकारका एकादशइंद्रियरूप करके एकादशविधिका स्वराट् (जीवरूप) हुआ, तिस जीवका शरीर खंड हुआ, खंडसे शरीर अनंतरूपसे प्रगट हुआ, जिन महत्तत्त्वादिकोंसे इस प्राणीका देहरूप जगत् उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥

एतद्वै श्रद्धया भक्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः ॥
समाहितात्मा निस्संगो विरक्त्या परिपश्यति ३० ॥

जिस पुरुषका मन भक्तिसे, वैराग्यसे, श्रद्धासे, योगाभ्याससे, एकाग्र होगया है, जिसका आत्मा सब संग त्यागकर विरक्तिकरके देखता है, वह महात्मा पुरुष इस भेदका निश्चय करसक्ता है ॥ ३० ॥

इत्येतत्कथितं गुर्वि ज्ञानं तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥
येनानुबुध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ३१ ॥

हे मातः ! साक्षात् ब्रह्मका स्वरूप होजाता है और प्रकृतिपुरुषका तत्त्व दीखने लगता है. वह ज्ञान मैंने तुमको सुनाया ३१ ॥

ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ॥
द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः ॥ ३२ ॥

मुझमें निष्ठा कर ज्ञानयोग करना, और निर्गुणभक्ति इन दोनोंका अर्थ एकही है भगवत्शब्दलक्षणरूप है ॥ ३२ ॥

यथेंद्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः ॥
एको नानेयते तद्वद्भगवाञ्छास्त्रवर्त्मभिः ॥ ३३ ॥

जिसप्रकार रूपरसआदि अनेक गुणयुक्त सबही वस्तु पृथक् २ मार्गवाली इन्द्रियोंसे अनेक भाँतिकी विदित होती है, जैसे कि हरड़ नेत्रसे हरित, जिह्वासे कसैली, त्वचासेअ-

शीत, प्रतीत होती है, इसही प्रकार एकही भगवान् शास्त्रोंके द्वारा नानाप्रकारके ज्ञात होते हैं ॥ ३३ ॥

क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपःस्वाध्यायमर्शनैः ॥
आत्मेंद्रियजयेनापि सन्यासेन च कर्मणाम् ॥ ३४॥

अनेक प्रकारकी शुभक्रिया करनेसे जैसे कुआ, बावडी, वाटिका, धर्मशाला, पाठशाला, औषधालयआदिक; यज्ञ, दान, तप, वेदपाठ, आत्माका विचार, इन्द्रियोंको जीतना, मनका दमन और कर्मोंका त्याग अर्थात् संन्यास करनेसे ३४

योगेन विविधांगेन भक्तियोगेन चैव हि ॥
धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥ ३५ ॥

अनेक अंगके योगाभ्यास, भक्तियोग, दृढवैराग्य; सकाम निष्काम धर्म, प्रवृत्तिनिवृत्ति मार्गमें निष्ठासे ॥ ३५ ॥

आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च ॥
ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणस्स्वदृक् ॥ ३६ ॥

आत्मतत्त्वबोध, दृढ वैराग्य, सगुणनिर्गुणस्वदृक् भगवान्की इन सब साधनोंसे प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ॥
कालस्य चाव्यक्तगतेर्योंतर्धावति जंतुषु ॥ ३७ ॥

मैंने भक्तियोगका स्वरूप तुमसे चार प्रकारका कहा और संसारके संहारकर्ता अप्रगट गतिवाले कालकाभी स्वरूप तुमसे कहा ॥ ३७ ॥

जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ॥
यास्वंग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥ ३८॥

हे मातः! विद्या प्राणीका अनेकयोनि अविद्या कर्मसे निर्मित होती हैं; जिनकी गतियोंमें प्रविष्ट होनेसे अपने शुद्ध-स्वरूपको भूलजाताहै; जैसाहै वैसा नहीं जानता और न ईश्वरकी गतिको पहिंचानता है ॥ ३८ ॥

नैतत् खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ॥
न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥३९॥

यह ज्ञान खल, अविनयी, अभिमानी, दुराचारी, पाख-ण्डीको कभी सुनाना नहि चाहिये ॥ ३९ ॥

न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ॥
नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥४० ॥

लोभीको, गृहस्थित अभक्तको और मेरे भक्तोंका द्रोह करनेवालोंको तौ कभी भूलकर यह ज्ञान नहि सुनावै ॥४०॥

श्रद्दधानायभक्ताय विनीतायानसूयवे ॥
भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाऽभिरताय च ॥ ४१ ॥

इस ज्ञानके सुननेका अधिकारी वे हैं जो श्रद्धालु, भक्त, नम्र, किसीसे शत्रुता न करैं, जीवमात्रसे मित्रता करनेवाला, शुश्रुषा करनेवाला मेरी सेवामें तत्पर हो ॥ ४१ ॥

बहिर्जातविरागाय शांतचित्ताय दीयताम् ॥
निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥ ४२ ॥

बहिर्मुख, वैराग्यवाला, शान्तचित्तवाला, मत्सरतारहित, पवित्रआत्मा, जो मुझको सबसे अधिक प्यारा मानै, ऐसे पुरुषोंको यह ज्ञान उपदेश करना उचित है ॥ ४२ ॥

य इदं शृणुयादंब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ॥
यो वाऽभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे॥४३॥
इति श्रीकपिलगीतायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

हे अम्ब ! जो पुरुष श्रद्धासे वारंवार इस कथाको सुनै और कहै वह मुझमें मिलकर मेरी पदवीको प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥ ❀ ॥

इति श्रीकपिलगीताभाषाटीकायां संपूर्णवर्णनं
नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

---

* **सवैया**–प्रीति प्रचण्ड लगी परब्रह्महि और सबै कछु लागत फीको ॥ शुद्ध हृदयमन होय सो निर्मल द्वैतप्रभाव मिटै सब जीको ॥ गोष्ठरू ज्ञान अनन्त चलैं जहँ सुन्दर जैसे प्रवाह नदीको ॥ ताहिते जानि करौ निशिवासर साधुको संग सदा अतिनीको ॥

क्रय्यपुस्तकें। वेदान्तग्रन्थाः। १५-७-७४

नाम. | की. रु. आ.

अपरोक्षानुभूति—श्रीशंकराचार्यकृत और स्वामि श्रीविद्यारण्यमुनिकृत दीपिकासहित तथा श्रीयुत पं० रामस्वरूपजीकृत भाषाटीका-संमेत। जिसमें—संक्षेपसे वेदान्त प्रक्रियाका सरलरीतिसे भलीप्रकार वर्णन है..... ... ०—१०

अष्टावक्रगीता—भाषाटीकासहित--श्रीअष्टावक्र-मुनिप्रणीत गुरुशिष्यसंवादमें ब्रह्मविद्या जाननेका अतिसरल सुगमोपाय है .... १—०

अवधूतगीता—श्रीमत्परमयोगिवर श्रीदत्तात्रेय प्रणीत—रेशमी गुटका. .... ०—५

अवधूतगीता—भाषाटीकासमेत. .... ०—७

अद्वैतसुधा. .... ०—१२

अध्यात्मप्रदीपिका—श्री अष्टावक्रमुनिविरचित अत्युत्तम ज्ञानमय वेदान्तोपदेश. .... ०—६

आत्मबोध—भाषाटीकासमेत। वेदान्तमें प्रवेश करनेवालेको शीघ्र बोध होता है. .... ०—३

गणेशगीता—पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषा टीकासहित (गणेशपुराणोक्त.) .... ०—६

गोविन्दाष्टक—आनन्दगिरिकृत संस्कृतटीका तथा पं० कन्हैयालाल शर्मकृत भाषाटीका-समेत .... ०—२

जीवन्मुक्तिगीता—भाषाटीकासमेत। ईस छोटेसे ग्रन्थमें ज्ञानोपदेश उत्तम वर्णित है. .... ०—१

तत्त्वबोध—भाषाटीकासमेत । यह वेदान्तका प्रथम श्रेणीका सर्वोत्तम ग्रन्थ है.... .... ०—२

देवीगीता—(देवीभागवतान्तर्गत) भाषाटीका-सहित । शाक्तलोगो याने देवीभक्तोंके लिये नित्य पाठकरने योग्यहै. .... ०—८

नारदगीता—मूलमात्र. .... ०—१

पुस्तक मिलनेका ठिकाणाः—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम् प्रेस—बम्बई.

टी. जी. मल्लाराध्य एवं,
स्व, वेदागद्य जी के द्वारा
"ज्ञा" को अर्पण,
१५-७-७४